

Chapter सत्रह

कलि को दण्ड तथा पुरस्कार

सूत उवाच

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।

दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; तत्र—वहाँ; गो-मिथुनम्—गाय तथा बैल को; राजा—राजा; हन्यमानम्—मारे जाते हुए; अनाथ-वत्—अपने मालिक से विलग हुए प्रतीत होनेवाले; दण्ड-हस्तम्—हाथों में लट्टु लिए; च—भी; वृषलम्—निम्न जाति के शूद्र को; ददृशे—देखा; नृप—राजा की तरह; लाञ्छनम्—वेश धारण किये।

सूत गोस्वामी ने कहा : उस स्थान पर पहुँचकर महाराज परीक्षित ने देखा कि एक नीच जाति का शूद्र, राजा का वेश बनाये, एक गाय तथा एक बैल को लट्टु से पीट रहा था, मानो उनका कोई स्वामी न हो।

तात्पर्य : कलियुग का मुख्य लक्षण यह है कि निम्न जाति के शूद्र, अर्थात् ब्राह्मण संस्कृति तथा आध्यात्मिक दीक्षा से रहित मनुष्य प्रशासकों या राजाओं का वेश धारण करेंगे और ऐसे अ-क्षत्रिय शासकों का प्रमुख व्यवसाय होगा, निर्दोष पशुओं को, विशेष रूप से ऐसी गायों तथा बैलों को जान से

मारना, जो अपने स्वामियों अर्थात् प्रामाणिक वैश्यों द्वारा अरक्षित होंगी। *भगवद्गीता* (१८.४४) में कहा गया है कि वैश्यों का कार्य कृषि, गोरक्षा तथा व्यापार से सम्बन्धित है। कलियुग में पतित वैश्य गायों को कसाईघरों में पहुँचाने में लगे रहते हैं। क्षत्रियों का कार्य राज्य के नागरिकों की रक्षा करना है, जबकि वैश्य गायों तथा बैलों की रक्षा करने तथा उन्हें अन्न तथा दूध-उत्पादन में उपयोग करने के लिए होते हैं। गाय दूध देने तथा बैल अन्न उत्पादन करने के लिए होता है। लेकिन कलियुग में शूद्र जाति के लोग प्रशासक-पदों पर हैं और माता एवं पिता तुल्य गाएँ तथा बैल, वैश्यों के द्वारा सुरक्षित न होने के कारण, शूद्र प्रशासकों द्वारा संचालित कसाईघरों में भेज दिये जाते हैं।

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ।
वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

वृषम्—बैल को; मृणाल-धवलम्—श्वेत कमल के समान सफेद; मेहन्तम्—पेशाब करता; इव—मानो; बिभ्यतम्—अत्यधिक डरा हुआ; वेपमानम्—काँपता हुआ; पदा एकेन—एक ही पैर पर खड़ा; सीदन्तम्—डरा हुआ; शूद्र-ताडितम्—शूद्र द्वारा मारे जाने से।

बैल इतना धवल था कि जैसे श्वेत कमल पुष्प हो। वह उस शूद्र से अत्यधिक भयभीत था, जो उसे मार रहा था। वह इतना डरा हुआ था कि एक ही पैर पर खड़ा थरथरा रहा था और पेशाब कर रहा था।

तात्पर्य : कलियुग का दूसरा लक्षण यह है कि धर्म के नियम, जो श्वेत-कमल के समान निष्कलुष तथा श्वेत हैं, उन पर इस युग के असंस्कृत शूद्र जनों का आक्रमण होगा। भले ही वे ब्राह्मण या क्षत्रिय पूर्वजों की सन्तानें हों, लेकिन समुचित शिक्षा तथा वैदिक वाङ्मय की संस्कृति के अभाव में, ऐसे शूद्र-तुल्य लोग धार्मिक नियमों की अवहेलना करेंगे और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति ऐसे लोगों से भयभीत रहेंगे। वे अपने को किसी भी धर्म के अनुयायी न होने की घोषणा करेंगे और कलियुग में धर्म-रूपी निर्मल बैल को ही मारने के लिए, अनेक 'वाद' तथा सम्प्रदाय उत्पन्न होंगे। राजसत्ता को धर्म-निरपेक्ष अर्थात् किसी विशेष धार्मिक सिद्धान्त से रहित घोषित किया जायेगा; फलस्वरूप धर्म के प्रति पूरी उपेक्षा बरती जाएगी। नागरिक मनमाना कर्म करने के लिए स्वतंत्र होंगे और वे साधु, शास्त्र तथा गुरु का सम्मान नहीं करेंगे। एक पाँव पर खड़ा बैल इस बात का संकेत है कि धर्म के नियम

क्रमशः विलुप्त हो रहे हैं। धार्मिक नियमों का आंशिक अस्तित्व भी अनेक अवरोधों से संशयपूर्ण रहेगा, मानो वह किसी समय लड़खड़ाकर गिरनेवाला है।

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।
विवत्सामाश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गाम्—गाय को; च—भी; धर्म-दुघाम्—उससे धर्म निकालने के कारण उपयोगी; दीनाम्—अब दीन बनी हुई; भृशम्—दुखी; शूद्र—निम्न जाति; पद-आहताम्—पाँव पर प्रहार की गई; विवत्साम्—बछड़े से रहित; आश्रु-वदनाम्—आँखों से आँसू भरे; क्षामाम्—अत्यन्त कुश, कमजोर; यवसम्—घास को; इच्छतीम्—मानो खाने की इच्छा करती हुई।

यद्यपि गाय उपयोगी है, क्योंकि उससे धर्म प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु अब वह दीन तथा बछड़े से रहित हो गई थी। उसके पाँवों पर शूद्र प्रहार कर रहा था। उसकी आँखों में आँसू थे और वह अत्यन्त दुखी तथा कमजोर थी। वह खेत की थोड़ी-सी घास के लिए लालायित थी।

तात्पर्य : कलि का अगला लक्षण है, गाय की दुखी अवस्था। गाय दुहने का अर्थ है, द्रव-रूप में धर्म प्राप्त करना। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि केवल दुग्धाहार करते थे। श्रील शुकदेव गोस्वामी गृहस्थ के यहाँ तब जाते, जब वह गाय दुहता होता और वे अपने निर्वाह भर के लिए उससे थोड़ा दूध लेते। यहाँ तक कि पचास वर्ष पहले तक, लोग साधु को एक गिलास दूध दिये बिना नहीं रहते थे। प्रत्येक गृहस्थ जल की तरह दूध देता था। सनातनधर्मी (वैदिक नियमों का अनुयायी) के लिए, यह प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है कि वह न केवल दूध प्राप्त करने के लिए, अपितु धार्मिक नियमों को प्राप्त करने के लिए गाएँ तथा बैल रखे। सनातनी लोग धार्मिक नियमों के आधार पर गाय की पूजा करते हैं और ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं। यज्ञ की अग्नि के लिए गो-दुग्ध की आवश्यकता होती है और यज्ञ करने से गृहस्थ सुखी रहता है। गाय का बछड़ा देखने में सुन्दर होता है और गाय को तुष्टि प्रदान करता है, जिससे वह अधिकाधिक दूध देती है। किन्तु कलियुग में, बछड़े को गाय से उन कारणों से जल्दी से जल्दी विलग कर दिया जाता है, जिसका उल्लेख *श्रीमद्भागवत* के इन पृष्ठों में नहीं किया जा सकता है। गाय अपनी आँखों में आँसू भर कर खड़ी रहती है और शूद्र ग्वाला कृत्रिम रीति से गाय को दुह लेता है और जब गाय दूध देना बन्द कर देती है, तो उसे काटे जाने के लिए भेज दिया जाता है। आधुनिक समाज में फैले हुए सभी कष्टों के लिए ये अत्यन्त जघन्य कृत्य ही उत्तरदायी हैं। लोगों को

यही पता नहीं चल पाता कि आर्थिक विकास के नाम पर वे क्या कर रहे हैं? कलियुग का प्रभाव उन्हें अज्ञान के अंधकार में रखेगा। शान्ति तथा सम्पन्नता के समस्त प्रयासों के बावजूद, उन्हें चाहिए कि वे गायों तथा बैलों को सभी प्रकार से सुखी रखें। मूर्ख लोग यह नहीं जानते कि गायों तथा बैलों को सुखी रखकर स्वयं सुखी कैसे बना जाये, लेकिन यह तो प्रकृति के नियम के अनुसार हकीकत है। इसके लिए हमें श्रीमद्भागवत को प्रमाण मानना चाहिए और मानवता के पूर्ण सुख के लिए इन नियमों को अपनाना चाहिए।

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ।

मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पप्रच्छ—पूछा; रथम्—रथ पर; आरूढः—आसीन; कार्तस्वर—सोने से; परिच्छदम्—जटित; मेघ—बादल; गम्भीरया—दोष-मुक्त कराते हुए; वाचा—वाणी; समारोपित—पूरी तरह सज्जित; कार्मुकः—धनुष-बाण।

धनुष-बाण से सज्जित तथा स्वर्ण-जटित रथ पर आसीन, महाराज परीक्षित उससे (शूद्र से)

मेघ के समान गर्जना करनेवाली गम्भीर वाणी से बोले।

तात्पर्य : दुष्टों को दण्डित करने के लिए हथियारों से लैस, राजसी प्राधिकार से सम्पन्न, महाराज परीक्षित जैसा शासक या राजा ही कलियुग के एजन्टों को ललकार सकता है। तभी इस अधम युग का सामना कर पाना सम्भव हो पाएगा। ऐसे सशक्त प्रशासनाधिकारी के अभाव में, सदैव शान्ति भंग होती रहती है। चुने हुए दिखावटी प्रशासक, अधम जनता के प्रतिनिधि के रूप में, कभी भी महाराज परीक्षित जैसे बलवान राजा की समता नहीं कर सकते। राजवेष अथवा राजसी-शैली का कोई अर्थ नहीं होता। मनुष्य के कार्य ही हैं, जिनकी गिनती होती है।

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ।

नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन हो; त्वम्—तुम; मत्—मेरी; शरणे—संरक्षण में; लोके—इस संसार में; बलात्—बलपूर्वक; हंसि—मार रहे हो; अबलान्—असहायों को; बली—यद्यपि बल से युक्त; नर-देवः—मनुष्य-रूप देवता; असि—प्रतीत होते हो; वेषेण—अपने वेश से; नट-वत्—अभिनेता जैसे; कर्मणा—कामों से; अद्वि-जः—जो द्विज न हो।

अरे, तुम हो कौन? तुम बलवान प्रतीत हो रहे हो, फिर भी तुम उन असहायों को मारने का साहस कर रहे हो, जो मेरे संरक्षण में हैं! वेष से तुम देवतुल्य पुरुष (राजा) बने हुए हो, किन्तु अपने कार्यों से तुम द्विज क्षत्रियों के सिद्धान्तों का उल्लंघन कर रहे हो।

तात्पर्य : ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विज कहलाते हैं, क्योंकि इनका पहला जन्म माता-पिता के संयोग से होता है और दूसरा जन्म प्रामाणिक आचार्य या गुरु द्वारा आध्यात्मिक दीक्षा से सांस्कृतिक संस्कार के फलस्वरूप होता है। इस तरह क्षत्रिय भी ब्राह्मण के समान द्विज होता है और उसका कर्तव्य यह होता है कि वह असहायों को संरक्षण दे। क्षत्रिय राजा असहायों को संरक्षण प्रदान करने तथा दुष्टों को दंड देने के लिए ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है। जब-जब प्रशासकों द्वारा इस नैतिक कार्य में अनियमितता आती है, तब धर्म की पुनःस्थापना के लिए भगवान् का अवतार होता है। कलियुग में बेचारे असहाय पशु, विशेष रूप से गाएँ, जिन्हें प्रशासकों से सभी प्रकार का संरक्षण प्राप्त होना चाहिए, वे अंधाधुंध मारी जाती हैं। इस तरह के प्रशासक, जिनकी नजरों के सामने ये घटनाएँ घटती रहती हैं, केवल नाम के ईश्वर-प्रतिनिधि हैं। ऐसे सशक्त प्रशासक वेश या पद के बल पर भले ही गरीब जनता के शासक बने रहें, लेकिन वास्तव में वे व्यर्थ के, निम्नजाति के द्विजों की सांस्कृतिक सम्पन्नता के गुणों से विहीन पुरुष हैं। निम्नजाति के एकजन्मा (असंस्कृत) व्यक्तियों से न्याय या समता की आशा करना व्यर्थ है। अतएव, राज्य के कुशासन के कारण कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति दुखी रहता है। आधुनिक मानव-समाज द्विज नहीं है। अतएव ऐसी प्रजा द्वारा प्रजा की सरकार, जो द्विज नहीं है, कलियुग की सरकार होगी जिसमें हर कोई दुखी होगा।

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना ।
शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यः—जिससे; त्वम्—तुम दुष्ट; कृष्णे—कृष्ण के; गते—चले जाने से; दूरम्—आँख से ओझल; सह—साथ; गाण्डीव—गाण्डीव नामक धनुष; धन्वना—धारण करनेवाला अर्जुन; शोच्यः—अपराधी; असि—हो; अशोच्यान्—निर्दोष; रहसि—एकान्त स्थान में; प्रहरन्—मारते हुए; वधम्—मारे जाने के; अर्हसि—पात्र हो।

अरे धूर्त, क्या तुम इस निर्दोष गाय को मारने का दुस्साहस इसीलिए कर रहे हो कि भगवान् कृष्ण तथा गाण्डीवधारी अर्जुन दृष्टि से बाहर हैं ? चूँकि तुम इस निर्दोष को एकान्त स्थान में मार रहे हो, अतएव तुम अपराधी हो और बध किये जाने के योग्य हो।

तात्पर्य : जिस सभ्यता में ईश्वर को देश निकाला दे दिया गया हो और जहाँ अर्जुन जैसा भक्त-योद्धा न हो, वहाँ कलियुग के संगी इस कानून-विहीन राज्य का लाभ उठाकर एकान्त कसाईघरों में गाय जैसे निर्दोष पशुओं का वध करने की व्यवस्था करते हैं। ऐसे पशु-हत्यारें महाराज परीक्षित जैसे पवित्र राजा द्वारा मृत्यु-दण्ड दिये जाने के पात्र हैं। जो अपराधी एकान्त स्थान में पशु का बध करता है, वह पवित्र राजा द्वारा उसी तरह मृत्यु-दण्ड पाने का भागी होता है, जिस तरह एकान्त में अबोध बालक का बध करनेवाला हत्यारा।

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ।
वृषरूपेण किं कश्चिद् देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वा—या तो; मृणाल-धवलः—कमल की तरह सफेद; पादैः—तीन पाँवों वाले; न्यूनः—छीने जाने से; पदा—एक पाँव से; चरन्—चलते हुए; वृष—बैल; रूपेण—के रूप में; किम्—क्या; कश्चित्—कोई; देवः—देवता; नः—हमको; परिखेदयन्—क्लेश पहुँचा रहे हो।

तब उन्होंने (महाराज परीक्षित ने) बैल से पूछा: अरे, तुम कौन हो? तुम श्वेत कमल जैसे धवल बैल हो या कोई देवता हो? तुम अपने तीन पैर खो चुके हो और केवल एक पैर पर चल रहे हो। क्या तुम बैल के रूप में कोई देवता हो, जो हमें इस तरह क्लेश पहुँचा रहे हो?

तात्पर्य : कम से कम महाराज परीक्षित के समय तक कोई गाय तथा बैल की दुर्दशा की कल्पना नहीं कर सकता था। अतएव ऐसा भयावह दृश्य देखकर महाराज परीक्षित आश्चर्यचकित थे। उन्होंने जानना चाहा कि वह बैल कहीं कोई देवता तो नहीं था, जिसने गाय तथा बैल के भविष्य को सूचित करने के लिए ऐसी दुर्दशा बना रखी हो।

न जातु कौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भते ।
भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; जातु—किसी समय; कौरव-इन्द्राणाम्—कुरुवंश के राजाओं का; दोर्दण्ड—बाहुबल से; परिरम्भते—सुरक्षित किया गया; भू-तले—पृथ्वी पर; अनुपतन्ति—शोक करते हुए; अस्मिन्—अब तक; विना—रहित; ते—तुम्हारे; प्राणिनाम्—जीव का; शुचः—आँखों से अश्रु।

कुरुवंश के राजाओं के बाहुबल से सुरक्षित राज्य में, आज मैं पहली बार तुम्हें आँखों में आँसू भरे शोक करते हुए देख रहा हूँ। आज तक किसी ने पृथ्वीतल पर राजा की उपेक्षा के कारण आँसू नहीं बहाए।

तात्पर्य : मनुष्यों तथा पशुओं के प्राणों की रक्षा सरकार का सबसे पहला और महत्वपूर्ण कर्तव्य है। किसी भी सरकार को ऐसे नियमों में भेदभाव नहीं बरतना चाहिए। इस कलियुग में किसी शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति के लिए राज्य द्वारा इस प्रकार की प्राणीओं की सुनियोजित कला देखना भयावह है। महाराज परीक्षित बैल की आँखों में अश्रु देखकर शोकाकुल हो रहे थे और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि उनके उत्तम शासन में ऐसी अभूतपूर्व घटना घट रही है। जहाँ तक जीवन का सम्बन्ध है, मनुष्य तथा पशु समान रूप से संरक्षित थे। यही ईश्वर के राज्य की रीति है।

मा सौरभेयात्र शुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।

मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मा—मत; सौरभेय—हे सुरभि पुत्र; अत्र—मेरे राज्य में; शुचः—शोक; व्येतु—होने दो; ते—तुम्हारा; वृषलात्—शूद्र द्वारा; भयम्—भय का कारण; मा—मत; रोदीः—रोओ; अम्ब—गो माता; भद्रम्—कल्याण; ते—तुम्हारा; खलानाम्—ईध्यालुओं का; मयि—मेरे रहते; शास्तरि—शासक या दमनकर्ता।

हे सुरभि-पुत्र, अब तुम और शोक न करो। तुम्हें इस अधम जाति के शूद्र से डरने की आवश्यकता नहीं है। तथा, हे गो-माता, जब तक मैं शासक या खलों के दमनकर्ता के रूप में हूँ, तब तक तुम्हें रोने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा सभी तरह से कल्याण होगा।

तात्पर्य : बैलों, गायों तथा अन्य समस्त पशुओं की सुरक्षा तभी हो सकती है, जब राज्य का शासन महाराज परीक्षित जैसे शासक द्वारा चलाया जाये। महाराज परीक्षित ने गाय को माता कहकर इसीलिए सम्बोधित किया, क्योंकि वे सभ्य द्विज क्षत्रिय राजा थे। सुरभि उन गायों को कहते हैं, जो वैकुण्ठ ग्रहों में रहती हैं और जिन्हें भगवान् कृष्ण स्वयं चराते हैं। जिस प्रकार सारे मनुष्य भगवान् के रूप-आकार

के अनुसार बनाये गये, उसी तरह सारी गाएँ वैकुण्ठ की सुरभि गायों जैसी बनायी गई हैं। भौतिक जगत में मानव-समाज मनुष्य को सभी प्रकार का संरक्षण प्रदान करता है, किन्तु सुरभि की उन सन्तानों को, जो चमत्कारिक-पेय अर्थात् दूध देकर मनुष्य को संरक्षण प्रदान करती हैं, उनको सुरक्षा प्रदान करनेवाला कोई कानून नहीं है। लेकिन महाराज परीक्षित तथा सारे पाण्डव गाय तथा बैल की महत्ता से पूर्ण रूप से अवगत थे और वे गो-हत्यारे को सभी प्रकार के दण्ड देने के लिए तैयार रहते थे, जिसमें मृत्यु-दण्ड भी सम्मिलित था। कभी-कभी गो-रक्षा के लिए आन्दोलन होते रहे हैं, किन्तु धर्मात्मा शासकों तथा पर्याप्त कानूनों के अभाव में, गाय तथा बैल को सुरक्षा प्रदान नहीं की जा सकी। मानव-समाज को चाहिए कि गाय तथा बैल की महत्ता को समझे और महाराज परीक्षित की भाँति, इन्हें सभी प्रकार का संरक्षण प्रदान करे। गाय तथा ब्राह्मण-संस्कृति की रक्षा करने पर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होंगे और हमें वास्तविक शान्ति प्रदान करेंगे, क्योंकि वे गाय तथा ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त दयालु हैं (गो-ब्राह्मण-हिताय)।

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ।

तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ।

अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; राष्ट्रे—राज्य में; प्रजाः—जीव; सर्वाः—सारे; त्रस्यन्ते—भयभीत रहते हैं; साध्वि—हे साध्वी; असाधुभिः—दुष्टों के द्वारा; तस्य—उस; मत्तस्य—मोह-ग्रस्त का; नश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं; कीर्तिः—यश; आयुः—आयु, उम्र; भगः—सम्पत्ति, धन; गतिः—दूसरा जन्म; एषः—ये हैं; राज्ञाम्—राजाओं के; परः—श्रेष्ठ; धर्मः—वृत्ति, धर्म; हि—निश्चय ही; आर्तानाम्—कष्ट भोगनेवालों के; आर्ति—कष्ट; निग्रहः—दमन; अतः—अतएव; एनम्—इस आदमी को; वधिष्यामि—मैं मार डालूँगा; भूत-द्रुहम्—जीवों की हिंसा करनेवाला; असत्-तमम्—अत्यन्त दुष्ट।

हे साध्वी, यदि राजा के राज्य में भी सभी प्रकार के जीव त्रस्त रहें, तो राजा की ख्याति, उसकी आयु तथा उसका उत्तम पुनर्जन्म (परलोक) नष्ट हो जाते हैं। यह राजा का प्रधान कर्तव्य है कि जो पीड़ित हों, सर्वप्रथम उनके कष्टों का शमन किया जाय। अतएव मैं इस अत्यन्त दुष्ट व्यक्ति को अवश्य मारूँगा, क्योंकि यह अन्य जीवों के प्रति हिंसक है।

तात्पर्य : जब किसी गाँव या नगर में जंगली पशु उत्पात मचाते हैं, तो पुलिस या दूसरे लोग उन्हें मारने की कार्यवाही करते हैं। इसी तरह, सरकार का कर्तव्य है कि वह समस्त असामाजिक तत्वों को, यथा चोरों, डकैतों तथा हत्यारों को तुरन्त मार डाले। वही दंड पशु-बधिकों को भी दिया जाना चाहिए, क्योंकि पशु भी राज्य की प्रजा हैं। प्रजा का अर्थ है, जिसने राज्य में जन्म लिया हो वह, और इसमें मनुष्य तथा पशु दोनों सम्मिलित हैं। जो भी जीव राज्य में जन्म लेता है, उसका मूल अधिकार है कि वह राजा के संरक्षण में रहे। जंगल के पशु भी राजा की प्रजा हैं, अतएव उन्हें भी जीने का अधिकार है। तो भला गाय तथा बैल जैसे घरेलू पशुओं के विषय में क्या कहा जा सकता है।

यदि कोई जीव किसी अन्य जीव को डराता है, तो वह अत्यन्त दुष्ट है और राजा को चाहिए कि वह तुरन्त ऐसे उत्पाती का वध कर दे। जिस प्रकार उत्पात मचानेवाले जंगली पशु को मार दिया जाता है, उसी तरह जो व्यक्ति जंगली पशुओं या अन्य पशुओं को वृथा ही मारता या त्रस्त करता है, उसे तुरन्त दण्डित किया जाना चाहिए। ईश्वरी विधान के अनुसार सारे जीव, चाहे वे जिस स्वरूप के हों, भगवान् की संतान हैं और किसी को अन्य पशु को मारने का कोई अधिकार नहीं है, जब तक ईश्वरी विधि-संहिता उसकी आज्ञा न दे। बाघ अपने जीवन-निर्वाह के लिए छोटे-छोटे पशुओं को मार सकता है, किन्तु मनुष्य अपने निर्वाह के लिए किसी पशु को नहीं मार सकता। यह उस ईश्वर का विधान है, जिन्होंने यह नियम बनाया है कि एक पशु दूसरे को खाकर जीता है। इसी तरह शाकाहारी भी अन्य जीवों को खाकर जीवित रहते हैं। अतएव नियम यह है कि ईश्वरी-विधान में जो भी निश्चित है, उसी के अनुसार विशेष जीवों को खाकर ही जीव को जीवित रहना चाहिए। ईशोपनिषद् का निर्देश है कि मनुष्य को भगवान् के निर्देशानुसार रहना चाहिए, अपनी इच्छा के अनुसार नहीं। मनुष्य ईश्वर द्वारा प्रदत्त तरह-तरह के अन्नों, फलों तथा दूध से जीवन-यापन कर सकता है और कुछ मामलों को छोड़कर, उसे पशु-मांस खाने की आवश्यकता नहीं है।

कभी-कभी दार्शनिक तथा विद्वान कहा जाने वाला मोह-ग्रस्त राजा या प्रशासक भी अपने राज्य में कसाईघर चलाने की अनुमति यह जाने बिना दे देता है कि पशुओं के उत्पीड़न से ऐसा मूर्ख राजा या प्रशासक नरक को जाता है। प्रशासक को अपनी प्रजा-जिसमें मनुष्य तथा पशु दोनों आते हैं, उनकी सुरक्षा के प्रति सतर्क रहना चाहिए और पूछ-ताछ करते रहना चाहिए कि कहीं पर कोई जीव किसी

अन्य जीव को सता तो नहीं रहा। सतानेवाले जीव को तुरन्त ही पकड़ कर, मार डालना चाहिए जैसाकि महाराज परीक्षित ने संकेत दिया।

जनता की सरकार को या जनता द्वारा चलाई जानेवाली सरकार को, मूर्ख सरकारी लोगों की इच्छानुसार, निर्दोष पशुओं के वध की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए। उन्हें शास्त्रोक्त ईश्वर की संहिता को जानना चाहिए। महाराज परीक्षित यहाँ उद्घरण देते हैं कि ईश्वर की संहिता के अनुसार, लापरवाह राजा या प्रशासक अपनी ख्याति, आयु, बल तथा अन्त में उन्नतिमय जीवन तथा मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त करने के अवसर को खतरे में डाल देता है। ऐसे मूर्ख लोग अगले जीवन के अस्तित्व में भी विश्वास नहीं करते।

इस श्लोक की टीका करते समय, हमारे समक्ष एक महान् आधुनिक राजनेता का वक्तव्य है, जिसकी हाल ही में मृत्यु हुई और जो अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त कर गया है, जिससे महाराज परीक्षित द्वारा व्यक्त की गई ईश्वरी संहिता के विषय में उसका अज्ञान प्रकट होता है। यह राजनेता ईश्वरी संहिता से इतना अनजान था कि उसने लिखा है, “मैं ऐसे किन्हीं अनुष्ठानों में विश्वास नहीं करता और विधि के रूप में भी उनका पालन करना तो एक प्रकार का छलावा और अपने आपको तथा अन्यो को धोखा देना होगा...इस विषय में मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है।”

जब हम आधुनिक युग के महान् राजनेता के इस वक्तव्य एवं महाराज परीक्षित के वक्तव्य में अन्तर ढूँढते हैं, तो हमें जमीन-आसमान का अन्तर दिखता है। महाराज परीक्षित शास्त्रीय संहिता के अनुसार धर्मात्मा थे, जबकि आधुनिक राजनेता अपने निजी विश्वास तथा भावना के अनुसार चलता है। इस संसार का कोई भी महान् पुरुष आखिर बद्धजीव ही है। उसके हाथ-पैर भौतिक प्रकृति की रस्सी से बँधे हैं, फिर भी वह अपने मनमाने विचारों द्वारा कर्म करने के लिए अपने को स्वतंत्र समझता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि महाराज परीक्षित के काल में लोग सुखी थे और पशुओं को समुचित संरक्षण दिया जाता था, क्योंकि प्रशासक न तो मनमानी करता था, न ईश्वरी नियम से अनजान होता था। मूर्ख श्रद्धाविहीन प्राणी ही ईश्वर के अस्तित्व की उपेक्षा करने का प्रयत्न करते हैं और बहुमूल्य मानव-जीवन की बाजी लगाकर अपने आपको धर्म-निरपेक्ष होने का दावा करते रहते हैं। मानव-जीवन विशेष रूप से ईश्वर के विज्ञान को जानने के लिए मिलता है, लेकिन मूर्ख प्राणी, विशेषतया इस

कलियुग में, ईश्वर को यथार्थ रूप में जानने के बदले, धार्मिक विश्वास तथा ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध प्रचार करते हैं, यद्यपि वे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के लक्षणों द्वारा ईश्वरीय नियमों से जकड़े रहते हैं।

कोऽवृश्चत् तव पादांस्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद ।
मा भूवंस्त्वाट्टशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कः—वह कौन है; अवृश्चत्—काट लिया; तव—तुम्हारे; पादान्—पाँवों को; त्रीन्—तीन; सौरभेय—हे सुरभि पुत्र; चतुः-पद—चौपाये हो; मा—कभी नहीं; भूवन्—ऐसा हुआ है; त्वाट्टशाः—जैसे कि तुम हो; राष्ट्रे—राज्य में; राज्ञाम्—राजाओं के; कृष्ण-अनुवर्तिनाम्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करने वाले।

उन्होंने (महाराज परीक्षित ने) बैल को बारम्बार सम्बोधित करते हुए इस तरह पूछा : हे सुरभि-पुत्र, तुम्हारे तीन पाँवों को किसने काट लिया है? उन राजाओं के राज्य में, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के नियमों के आज्ञाकारी हैं, तुम्हारे समान दुखी कोई नहीं है।

तात्पर्य : समस्त राज्यों के राजाओं या प्रशासकों को भगवान् कृष्ण की संहिताएँ (सामान्यतया भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत) जाननी चाहिए और उन्हीं के अनुसार मनुष्य को जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्म करना चाहिए, जिससे भौतिक जीवन के सारे कष्ट विनष्ट हो जाँय। जो मनुष्य भगवान् कृष्ण की संहिताओं को जानता है, उसे यह गति बिना कष्ट के मिल सकती है। भगवद्गीता में, संक्षेप में, हम ईश्वर की संहिताएँ समझ सकते हैं, और श्रीमद्भागवत में उनकी विस्तृत व्याख्या हुई है।

जिस राज्य में कृष्ण के आदेशों का पालन किया जाता है, वहाँ कोई दुखी नहीं रहता। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ प्रथम लक्षण यह है कि धर्म के प्रतिनिधि के तीन पाँव कट जाते हैं; फिर कष्टों की झड़ी लग जाती है। जब कृष्ण साक्षात् विद्यमान थे तो इन आदेशों का, निस्सन्देह, पालन होता था, किन्तु उनकी अनुपस्थिति में ऐसे अन्धे लोगों के लिए, जो उच्चपद पर निहित हैं, श्रीमद्भागवत के पृष्ठों में उन्हें अंकित कर दिया गया है।

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आख्याहि—मुझसे कहो; वृष—हे बैल; भद्रम्—कल्याण; वः—तुम्हारा; साधूनाम्—ईमानदारों का; अकृत-आगसाम्—अपराधहीनों का; आत्म-वैरूप्य—अपना रूप बिगाड़ना; कर्तारम्—कर्ता; पार्थानाम्—पृथा के पुत्रों का; कीर्ति-दूषणम्—यश को कलंकित करना।

हे बृषभ, तुम निरपराध हो और पूर्णतया ईमानदार हो, अतएव मैं तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ। कृपया मुझे अंग-भंग करनेवाले दुष्ट के बारे में बताओ, जो पृथा के पुत्रों के यश को कलंकित कर रहा है।

तात्पर्य : महाराज रामचन्द्र तथा उनके पद-चिह्नों पर चलनेवाले राजा जैसे पाण्डवों तथा उनके वंशजों के यश को भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि उनके राज्य में निरपराध तथा ईमानदार जीव कभी कष्ट नहीं पाते थे। बैल तथा गाय अत्यन्त निरपराधी-जीवों के प्रतीक हैं, क्योंकि इनके मल तथा मूत्र को भी मानव-समाज उपयोग में लाता है। पृथा-पुत्रों के वंशज, यथा महाराज परीक्षित को भय था कि उनकी ख्याति विनष्ट होगी, किन्तु आजकल के नेता ऐसे निरपराध पशुओं का वध करने से भी डरते नहीं। यही वह अन्तर दिखता है, जो उन धर्मात्मा राजाओं के शासन में तथा ईश्वर के आदेशों के ज्ञान से शून्य गैर-जिम्मेदार शासकों द्वारा शासित आधुनिक राज्यों में होता है।

जनेऽनागस्यघं युञ्जन् सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ।

साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

जने—जीवों में; अनागसि—निरपराध; अघम्—कष्ट; युञ्जन्—लगाकर; सर्वतः—सर्वत्र; अस्य—ऐसे अपराधियों का; च—तथा; मत्-भयम्—मेरा भय; साधूनाम्—ईमानदार व्यक्तियों का; भद्रम्—कल्याण; एव—निश्चय ही; स्यात्—होगा; असाधु—दुष्ट; दमने—दमन में; कृते—ऐसा किये जाने पर।

निरपराध जीवों को जो कोई भी कष्ट पहुँचाता है, उसे चाहिए कि विश्व में जहाँ कहीं भी हो, मुझसे डरे। दुष्टों का दमन करने से निरपराध व्यक्ति को स्वतः लाभ पहुँचता है।

तात्पर्य : बेईमान दुष्ट लोग राज्य के कायर तथा नपुंसक शासनाध्यक्षों के कारण फूलते-फलते हैं। किन्तु जब शासनाध्यक्ष, राज्य के किसी भी कोने के सभी प्रकार के बेईमान दुष्टों का दमन करने में समर्थ होते हैं, तो वे पनप नहीं पाते। जब दुष्टों को दृष्टान्त रूप से दण्डित किया जाता है, तो समस्त भद्रता स्वतः ही उसके पीछे पीछे आती है। जैसा पहले कहा जा चुका है, यह राजा या प्रशासक का

मुख्य कर्तव्य है कि वह शान्त, निरपराध प्रजा को सभी प्रकार से सुरक्षा प्रदान करे। भगवान् के भक्त स्वभाव से शान्त तथा निरपराध होते हैं, अतएव यह राज्य का मूल कर्तव्य है कि वह हर एक को भगवद्-भक्त बनने में सहायता करे। इस तरह स्वतः ही सारे नागरिक शान्त तथा निरपराध होंगे। तब राजा का एकमात्र कर्तव्य रह जायेगा बेईमान दुष्टों का दमन करना। इससे सारे मानव-समाज में शान्ति तथा एकता आयेगी।

अनागःस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।

आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अनागःसु इह—निरपराध; भूतेषु—जीवों में; यः—जो व्यक्ति; आगः-कृत्—अपराध करता है; निरङ्कुशः—उच्छृङ्खल, उदंड; आहर्ता अस्मि—मैं काट लूँगा; भुजम्—बाँहें; साक्षात्—प्रत्यक्ष; अमर्त्यस्य अपि—चाहे देवता क्यों न हो; स-अङ्गदम्—बाजू-बन्द तथा अन्य सजावट से युक्त।

जो उदंड व्यक्ति निरपराधियों को सता कर अपराध करता है, वह मेरे द्वारा उखाड़ फेंका जायेगा, चाहे वह बाजूबंद तथा अन्य अलंकारों से युक्त स्वर्ग का निवासी ही क्यों न हो।

तात्पर्य : स्वर्ग के निवासी अमर कहलाते हैं, क्योंकि उनकी आयु मनुष्यों की अपेक्षा काफी लम्बी होती है। मनुष्य के लिए, जिसकी आयु अधिक से अधिक सौ वर्ष होती है, लाखों वर्ष की आयु निश्चय ही अमर लगेगी। उदाहरणार्थ, भगवद्गीता से हमें पता चलता है कि ब्रह्मलोक का एक दिन ४३,००,००० × १,००० सौर वर्षों के तुल्य है। इसी प्रकार स्वर्ग के अन्य ग्रहों का एक दिन इस ग्रह के छह मास के तुल्य होता है और वहाँ के निवासियों की आयु वहाँ के एक करोड़ वर्ष की होती है। अतः स्वर्ग-लोकों में, चूँकि मनुष्य की अपेक्षा उन निवासियों की आयु काफी बड़ी होती है, अतएव कल्पना के आधार पर वहाँ के निवासी अमर कहलाते हैं, यद्यपि भौतिक ब्राह्माण्ड के भीतर अमर कोई भी नहीं है।

महाराज परीक्षित स्वर्ग के ऐसे निवासियों को भी ललकारते हैं, यदि वे निरपराधों को कष्ट पहुँचाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य के शासनाध्यक्ष को महाराज परीक्षित के समान सशक्त होना चाहिए, जिससे वह सब से बलवान अपराधी को भी दंड दे सके। राज्य के शासनाध्यक्ष का यह सिद्धान्त होना चाहिए कि जो ईश्वर के आदेशों की अवमानना करने वाला अपराधी है, उसे सदैव दण्डित किया जाय।

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ।

शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; हि—निश्चय ही; परमः—परम; धर्मः—वृत्तिपरक कर्तव्य; स्व-धर्म-स्थ—अपने नियत कर्म के प्रति आज्ञाकारी; अनुपालनम्—सदैव शरण देनेवाला; शासतः—शासन चलाते हुए; अन्यान्—अन्यों को; यथा—जिस तरह; शास्त्रम्—शास्त्रों के अनुसार; अनापदि—बिना खतरे के; उत्पथान्—पथ-भ्रष्ट व्यक्ति; इह—एक प्रकार से।

शासक का यह परम धर्म है कि कानून-पालन करने वाले व्यक्तियों को सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करे और जो सामान्य दिनों में, जब आपात्काल नहीं रहता, शास्त्रों के अध्यादेशों से विपथ हो जाते हैं, उन्हें दण्ड दे।

तात्पर्य : शास्त्रों में आपद्-धर्म का उल्लेख है, जिसका अर्थ होता है असामान्य घटनाओं के समय का कर्तव्य। कहा जाता है कि किसी असामान्य भयावह परिस्थिति में ऋषि विश्वामित्र को कुत्ते का मांस खाना पड़ा था। आपात्काल में मनुष्य को किसी भी पशु का मांस खाने की छूट दी जा सकती है, लेकिन इसका अर्थ यह भी तो नहीं है कि मांस खानेवालों के लिए नियमित कसाईघर चलाया जाय और राज्य द्वारा इस प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जाय। केवल स्वाद के लिए, सामान्य समय में, किसी को भी मांस खाकर जीवित रहने का प्रयास नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है, तो राजा या प्रशासक को चाहिए कि इस अशिष्ट भोग के लिए उसे दण्डित करे।

विभिन्न कर्मों में रत, विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए, शास्त्रों के नियत आदेश हैं और जो उनका पालन करता है, वह स्वधर्मस्थ अर्थात् अपने संस्तुत कर्तव्यों का पालन करने वाला कहलाता है। भगवद्गीता (१८.४८) में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को चाहिए कि अपने नियत कर्मों (स्वधर्म) को न छोड़े, भले ही वे सर्वथा त्रुटिहीन न हों। ऐसे स्वधर्म का आपात्काल में उल्लंघन किया जा सकता है, यदि परिस्थितियाँ उसे विवश करें, लेकिन सामान्य दिनों में उसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। शासनाध्यक्ष को चाहिए कि वह देखे कि ऐसा स्वधर्म, चाहे जैसी भी परिस्थिति हो, उसके पालन करने वालो द्वारा बदला न जाय और उसे चाहिए कि स्वधर्म पालक को सभी प्रकार का संरक्षण प्रदान करे। उल्लंघन करनेवाले को शास्त्रों के अनुसार दण्ड देना चाहिए और राजा का धर्म है कि वह देखे कि प्रत्येक व्यक्ति शास्त्रों में नियत स्वधर्म का कड़ाई से पालन करता है।

धर्म उवाच

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ।

येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

धर्मः उवाच—पूर्तिमंत धर्म ने कहा; एतद्—ये सारे; वः—आपके द्वारा; पाण्डवेयानाम्—पांडववंशियों का; युक्तम्—के उपयुक्त; आर्त—कष्ट भोगने वाला; अभयम्—समस्त भय से मुक्ति; वचः—शब्द; येषाम्—उन; गुण-गणैः—योग्यताओं से; कृष्णः—कृष्ण ने भी; दौत्य-आदौ—दूत कर्म इत्यादि.; भगवान्—भगवान्; कृतः—सम्पन्न किया।

धर्म ने कहा : अभी आपने जो शब्द कहे हैं, वे पाण्डववंशीय व्यक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। पाण्डवों के भक्तिपूर्ण गुणों से मोहित होकर ही, भगवान् कृष्ण ने दूत का कर्तव्य निभाया।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित द्वारा जो आश्वासन तथा वचन दिये गये, वे उनकी वास्तविक शक्ति की अतिरंजना करनेवाले न थे। महाराज ने कहा था कि धर्म का उल्लंघन करनेवाले, यदि स्वर्ग के निवासी हों, तो भी वे उनके कठोर शासन से बच नहीं सकते। वे मिथ्या ही गर्वित नहीं थे, क्योंकि भगवद्भक्त भगवान् के ही समान और कभी-कभी उनकी कृपा से उनसे भी बढ़कर शक्तिशाली होता है और यदि भक्त कोई वचन देता है, तो भले ही सामान्य रूप से उसका पूरा होना कठिन लगे, लेकिन भगवान् की कृपा से वह ठीक से पूरा हो जाता है। पाण्डवों ने अपनी अनन्य भक्ति तथा भगवान् के प्रति पूर्ण शरणागति द्वारा भगवान् का सारथी बनना या कभी-कभी पत्रवाहक बनना सम्भव हो पाया। भक्तों के लिए भगवान् द्वारा किये गये ऐसे कार्य उन्हें अत्यन्त भाते हैं, क्योंकि भगवान् उन अनन्य भक्तों की सेवा करना चाहते हैं, जिनके पास भगवान् की प्रेम पूर्ण सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता। भगवान् के विख्यात सखा-सेवक अर्जुन के पौत्र, महाराज परीक्षित अपने पितामह की ही भाँति शुद्ध भक्त थे। अतएव भगवान् सदैव उनके साथ थे—यहाँ तक कि जब वे माता के गर्भ में थे और उन पर अश्वत्थामा के ज्वलन्त ब्रह्मास्त्र का प्रहार हुआ था, तब भी वे उनके साथ थे। भक्त सदैव भगवान् के संरक्षण में रहता है, अतएव महाराज परीक्षित द्वारा दिया गया संरक्षण का आश्वासन निरर्थक नहीं हो सकता था। धर्म ने इस तथ्य को स्वीकार किया और राजा को अपनी उच्च प्रतिष्ठा के अनुकूल आश्वासन देने के लिए धन्यवाद दिया।

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ।

पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वयम्—हम; क्लेश-बीजानि—कष्टों के मूल कारण को; यतः—जहाँ से; स्युः—ऐसा होता है; पुरुष-ऋषभ—हे समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ; पुरुषम्—पुरुष को; तम्—उस; विजानीमः—जानो; वाक्य-भेद—मतभेद; विमोहिताः—मोहग्रस्त ।

हे पुरुषश्रेष्ठ, यह निश्चित कर पाना अत्यन्त कठिन है कि किस दुष्ट ने हमें कष्ट पहुँचाया है, क्योंकि हम सैद्धान्तिक दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न मतों से भ्रमित हैं।

तात्पर्य : संसार में ऐसे अनेक सैद्धान्तिक दार्शनिक हैं, जो कार्य-कारण सम्बन्धी, विशेष रूप से कष्टों के कारण तथा जीवों पर उनके प्रभावों के विषय में, अपना-अपना मत रखते हैं। सामान्यतया छः महान् दार्शनिक हैं—वैशेषिक दर्शन के लेखक कणाद, तर्कशास्त्र के लेखक गौतम, योग के लेखक पतंजलि, सांख्य-दर्शन के लेखक कपिल, कर्म-मीमांसा के लेखक जैमिनि तथा वेदान्त-दर्शन के लेखक व्यासदेव।

यद्यपि धर्म-रूप बैल तथा पृथ्वी-रूप गाय भलीभाँति जानते थे कि मूर्तिमंत कलि ही उनके क्लेशों का कारण है, फिर भी भगवद्भक्तों के रूप में, वे यह भी जानते थे कि भगवान् की अनुमति के बिना कोई उनको कष्ट नहीं पहुँचा सकता। *पद्मपुराण* के अनुसार, हमारे वर्तमान क्लेश पाप रूपी लता में फल लगने के कारण हैं, किन्तु शुद्ध भक्ति का आचरण करने से ये पाप के अंकुर भी धीरे-धीरे मुरझा जाते हैं। इस तरह उत्पात मचानेवालों को देखते हुए भी भक्त उन्हें कष्ट पहुँचाने का दोषी नहीं ठहराते। वे मान लेते हैं कि उत्पाती व्यक्ति किसी अप्रत्यक्ष कारण से ऐसा कर रहा है। अतएव वे कष्टों को ईश्वर द्वारा मात्र कम करके दिए गए समझकर सहन करते हैं, अन्यथा उनके क्लेश और भी भारी होते।

महाराज परीक्षित चाहते थे कि प्रत्यक्ष उत्पीड़क के विरुद्ध आरोप प्राप्त हो ले, किन्तु उन्होंने उपर्युक्त आधार पर ऐसा करने से इनकार कर दिया। फिर भी मनोधर्मी दार्शनिक भगवान् की स्वीकृति को मान्यता नहीं देते; वे अपने खुद के ढंग से क्लेशों का कारण ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं, जैसाकि अगले श्लोकों में बताया जाएगा। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, ऐसे मनोधर्मी स्वयं भ्रमित रहते हैं, अतएव वे यह नहीं जान पाते कि समस्त कारणों के अन्तिम कारण परमेश्वर ही हैं।

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।

दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

केचित्—उनमें से कोई; विकल्प-वसना:—सभी प्रकार के द्वैत से इनकार करनेवाले; आहुः—घोषित करते हैं; आत्मानम्—अपने आपको; आत्मनः—अपना; दैवम्—अतिमानव, दैवी; अन्ये—अन्य लोग; अपरे—और भी कोई; कर्म—कर्म; स्वभावम्—भौतिक प्रकृति; अपरे—अन्य कई; प्रभुम्—स्वामी ।

सभी प्रकार के द्वैत से इनकार करनेवाले कतिपय दार्शनिक यह घोषित करते हैं कि मनुष्य अपने सुख तथा दुख के लिए स्वयं ही उत्तरदायी हैं। अन्य लोग कहते हैं कि दैवी शक्तियाँ इसके लिए जिम्मेदार हैं, जबकि कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो कहते हैं कि इसके लिए कर्म जिम्मेदार है और जो निपट भौतिकतावादी हैं, वे मानते हैं कि प्रकृति ही इसका अन्तिम कारण है।

तात्पर्य : जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, जैमिनि तथा उनके अनुयायियों जैसे दार्शनिक स्थापित करते हैं कि सकाम कर्म ही सारे सुख तथा दुख का मूल कारण है और यदि कोई श्रेष्ठ अधिकारी, कोई अतिमानवीय शक्तिशाली भगवान् या देवता हैं, तो वे भी सकाम कर्म के प्रभाव के अधीन हैं, क्योंकि वे लोगों के कर्म के अनुसार ही फल देते हैं। उनका कहना है कि कर्म स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि कर्म किसी कर्ता द्वारा सम्पन्न होता है, अतएव कर्ता ही अपने सुख या दुख का कारण है। *भगवद्गीता* (६.५) में भी पुष्टि की गई है कि भौतिक राग से मुक्त मन के द्वारा मनुष्य संसार के कष्टों से अपना उद्धार कर सकता है। अतएव किसी को मन के भौतिक राग के कारण अपने आपको बन्धन में नहीं डालना चाहिए। इस तरह मनुष्य का मन ही उसके सुख तथा दुख में उसका मित्र या शत्रु है।

नास्तिक, भौतिकतावादी सांख्यवादी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भौतिक प्रकृति समस्त कारणों की कारण है। उनके मतानुसार, भौतिक तत्त्वों के संयोग ही भौतिक सुख-दुख के कारण हैं और पदार्थ का विघटन ही समस्त भौतिक तापों से मुक्त होने का कारण है। गौतम तथा कणाद परमाणुओं के संयोग को ही प्रत्येक वस्तु का कारण मानते हैं और अष्टावक्र जैसे निर्विशेषवादी यह पाते हैं कि ब्रह्म का आध्यात्मिक तेज ही समस्त कारणों का कारण है। किन्तु *भगवद्गीता* में स्वयं भगवान् घोषित करते हैं कि वे ही निराकार ब्रह्म के स्रोत हैं। अतएव वे अर्थात् भगवान् का व्यक्तित्व ही समस्त कारणों के परम कारण हैं। *ब्रह्म-संहिता* में भी इसकी पुष्टि हुई है कि भगवान् कृष्ण ही समस्त कारणों के अन्तिम कारण हैं।

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ।

अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अप्रतर्क्यात्—तर्कशक्ति से परे; अनिर्देश्यात्—चिन्तन-शक्ति से परे; इति—इस प्रकार; केषु—कोई; अपि—भी; निश्चयः—निश्चित रूप से; अत्र—यहाँ पर; अनुरूपम्—उनमें से सही, उचित; राज-ऋषे—हे राजर्षि; विमृश—अपने आप निर्णय लो; स्व—अपनी; मनीषया—बुद्धि की शक्ति द्वारा ।

कुछ ऐसे भी चिन्तक हैं, जिनका विश्वास है कि न तो तर्क द्वारा कष्ट का कारण निश्चित किया जा सकता है, न उसे कल्पना से जाना जा सकता है, न ही शब्दों द्वारा उसे व्यक्त किया जा सकता है। हे राजर्षि, आप अपनी बुद्धि से यह सब सोचकर अपने आप निर्णय करें।

तात्पर्य : वैष्णवमतावलम्बी अर्थात् भगवद्भक्तों का ऐसा विश्वास है, जैसाकि ऊपर कहा गया है, कि परमेश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी घटित नहीं हो सकता। वे ही परम निर्देशक हैं, क्योंकि वे भगवद्गीता (१५.१५) में पुष्टि करते हैं कि सर्वव्यापी परमात्मा के रूप में वे सबों के हृदय में वास करते हैं और सारे कर्मों पर निगरानी रखते हैं तथा सारे कर्मों के साक्षी हैं। यहाँ पर नास्तिकों के इस तर्क का खण्डन होता है कि जब तक किसी न्यायाधीश के समक्ष किसी का दुष्कर्म सिद्ध न हो ले, तब तक उसे दण्डित नहीं किया जा सकता, क्योंकि हम निरन्तर साथ रहने वाले साक्षी तथा जीव के नित्य संगी को स्वीकार करते हैं। जीव ने पूर्वजन्म में या इसी जीवन में शरीर रूपी जो कुछ किया हो, उसे वह भूल सकता है, लेकिन हमें यह जान लेना चाहिए कि भौतिक शरीर रूपी एक ही वृक्ष में जीव तथा परमात्मा दो पक्षियों के रूप में, बैठे हुए हैं। इनमें से एक अर्थात् जीव उस वृक्ष के फल खा रहा है और दूसरा अर्थात् परमात्मा उसके कार्यकलापों का साक्षी बना हुआ है। अतएव परमात्मा ही जीव के सारे कार्यकलापों के साक्षी हैं और उनके निर्देशानुसार जीव स्मरण रख सकता है या भूल सकता है कि उसने पूर्वजन्म में क्या किया। अतएव वे सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म तथा प्रत्येक के हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वह समस्त भूत, वर्तमान तथा भविष्य के ज्ञाता हैं, उनसे कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। भक्तगण इस सत्य को जानते हैं, अतएव वे फल की आकांक्षा न करके अपना कार्य निष्ठापूर्वक करते हैं। इसके अतिरिक्त, चिन्तन या पाण्डित्य के द्वारा भगवान् की प्रतिक्रियाओं का अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। तो फिर वे क्यों कुछ को कष्ट में डालते हैं और कुछ को नहीं? वे

वैदिक ज्ञान के परम ज्ञाता हैं, और इस तरह वे वास्तविक वेदान्ती हैं। साथ ही, वे वेदान्त के संकलनकर्ता हैं। कोई भी उनसे स्वतंत्र नहीं है और हर कोई अलग-अलग ढंग से उनकी सेवा में लगा हुआ है। जीव को बद्ध अवस्था में ऐसी सेवाएँ प्रकृति की शक्ति के अधीन होकर करनी पड़ती हैं, जबकि मुक्त अवस्था में स्वेच्छा से भगवान् की सेवा के लिए आध्यात्मिक प्रकृति जीव की सहायता करती है। उनके कर्मों में किसी प्रकार असंगति या उन्माद नहीं होता। वे सब परम सत्य के पथ पर होते हैं। भीष्मेदव ने भगवान् के अचिन्त्य कर्मों का ठीक अनुमान लगाया था। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि महाराज परीक्षित के समक्ष, धर्म के प्रतिनिधि तथा पृथ्वी के प्रतिनिधि के सारे कष्टों को जानबूझ कर यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया था, क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि आध्यात्मिक उन्नति के दो स्तम्भों—गाय (पृथ्वी) तथा ब्राह्मण (धर्म)—को किस तरह संरक्षण प्रदान करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह भगवान् के वश में है। वे जब किसी के द्वारा कोई काम कराना चाहते हैं, तो उनका कर्म सही होता है। इस प्रकार महाराज परीक्षित की महानता की परीक्षा ली गई। अब हमें देखना है कि वे अपने कुशाग्र मन से इसे कैसे हल करते हैं।

सूत उवाच

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तमाः ।

समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; धर्मे—साक्षात् धर्म; प्रवदति—इस तरह बोलकर; सः—वह; सम्राट्—राजा; द्विज-सत्तमाः—हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ; समाहितेन—ध्यानपूर्वक; मनसा—मन से; विखेदः—किसी त्रुटि के बिना; पर्यचष्ट—प्रत्युत्तर दिया; तम्—उसको।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, धर्म को इस तरह बोलते सुनकर, सम्राट परीक्षित अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बिना किसी त्रुटि या खेद के उन्होंने इस तरह उत्तर दिया।

तात्पर्य : धर्मरूप बैल का कथन दर्शन तथा ज्ञान से परिपूर्ण था और राजा इससे संतुष्ट हुआ, क्योंकि वह जान गया कि पीड़ित बैल कोई सामान्य जीव न था। जब तक कोई परमेश्वर के नियम से पूरी तरह अवगत न हो, तब तक वह ऐसी मार्मिक बातों का या दार्शनिक सत्य का भाषण नहीं कर

सकता। सम्राट भी समान रूप से कुशाग्र बुद्धिवाला था, अतएव उसने बिना किसी त्रुटि या संशय के उत्तर दिया।

राजोवाच

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।

यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा ने कहा; धर्मम्—धर्म; ब्रवीषि—जैसा तुम कहते हो; धर्म-ज्ञ—हे धर्म के नियमों को जाननेवाले; धर्मः—साक्षात् धर्म; असि—तुम हो; वृष-रूप-धृक्—बैल के वेश में; यत्—जो भी; अधर्म-कृतः—अधर्म करता है; स्थानम्—स्थान; सूचकस्य—पहचान करनेवाले का; अपि—भी; तत्—वह; भवेत्—हो जाता है।

राजा ने कहा : अहो! तुम तो बैल के रूप में हो। तुम तो धर्म के सत्य को जानते हो और तुम सिद्धान्त के अनुसार बोल रहे हो कि अधार्मिक कर्मों के अपराधी के लिए वांछित गन्तव्य (गति) वही है, जो उस अपराधी की पहचान करनेवाले की है। तुम साक्षात् धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो।

तात्पर्य : भक्त का निष्कर्ष यही है कि भगवान् की इच्छा के बिना, कोई उपकारी बनने या हानि पहुँचाने वाला बनने के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होता। अतएव भक्त किसी को ऐसे कर्म के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं मानता, किन्तु वह दोनों ही किस्सों में यह मान लेता है कि हानि या लाभ ईश्वर प्रदत्त हैं और इस तरह यह उनकी कृपा है। लाभ के विषय में, इससे कोई इनकार नहीं करेगा कि वह ईश्वर प्रदत्त होता है, लेकिन हानि या पराजय के विषय में मनुष्य संशय करता है कि भला भगवान् अपने भक्त पर इतना निष्ठुर क्यों होंगे कि उसे विपत्ति में डाले? ईसा मसीह को जब अज्ञानी लोगों ने क्रूस पर चढ़ा दिया, तो वे महान् विपत्ति में पड़े प्रतीत होते थे, लेकिन वे अपराधकर्ता के ऊपर कभी क्रुद्ध नहीं हुए। अनुकूल या प्रतिकूल वस्तु को स्वीकार करने की यही विधि है। इस तरह भक्त के लिए अपराधी की बुराई करनेवाला अपराधकर्ता के ही समान पापी है। भगवत्कृपा से भक्त सभी प्रकार की विपत्तियाँ सहता है। महाराज परीक्षित ने इसे देखा, इसीलिये वे समझ सके कि यह बैल और कोई न होकर, साक्षात् धर्म है। दूसरे शब्दों में, भक्त को किसी तरह का कष्ट नहीं होता, क्योंकि तथाकथित कष्ट भी भक्त के लिए भगवान् की कृपा है, क्योंकि भक्त भगवान् को हर वस्तु में

देखता है। गाय तथा बैल ने कभी राजा से यह शिकायत नहीं की कि वे कलियुग द्वारा सताये जा रहे हैं, यद्यपि राज्याधिकारियों के समक्ष सभी लोग ऐसी शिकायतें पेश करते हैं। बैल के असाधारण आचरण से ही राजा ने निष्कर्ष निकाला कि बैल साक्षात् धर्म था, क्योंकि धर्म की बारीकियों को अन्य कोई भी इस तरह नहीं समझ सकता।

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।

चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अथवा—या कि; देव—भगवान्; मायायाः—शक्तियाँ; नूनम्—अत्यन्त न्यून; गतिः—चाल; अगोचरा—अचिन्त्य; चेतसः—या तो मन से; वचसः—वाणी से; च—अथवा; अपि—भी; भूतानाम्—सभी जीवों का; इति—इस प्रकार; निश्चयः—निष्कर्ष निकला।

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। कोई न तो मानसिक चिन्तन द्वारा, न ही शब्द-चातुरी द्वारा उनका अनुमान लगा सकता है।

तात्पर्य : यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि भक्त को कर्ता की पहचान करने से क्यों विरत होना चाहिए, जब वह यह निश्चित रूप से जानता है कि भगवान् ही सब वस्तुओं के कर्ता हैं। अन्तिम कर्ता को जानते हुए, मनुष्य को चाहिए कि वह वास्तविक सम्पन्नकर्ता से अनजान नहीं बना रहे। इस सन्देह का उत्तर यह है कि भगवान् भी प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होते, क्योंकि उनके द्वारा नियुक्त मायाशक्ति के द्वारा ही सम्पन्न होता है। माया सदैव भगवान् की परम सत्ता के विषय में सन्देह उत्पन्न करती रहती है। धर्म यह अच्छी तरह जानता था कि परमेश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी सम्पन्न नहीं हो सकता, तो भी माया उसे संशय में डाल रही थी, जिससे वह परम कारण बताने से कतराता रहा। यह संशय, कलि तथा माया दोनों के कल्मष के कारण था। कलियुग का सारा वातावरण भ्रामक शक्ति के कारण विशाल रूप में दिखता है और इसकी माप अकथ्य है।

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ।

अधर्माशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; शौचम्—पवित्रता; दया—दया; सत्यम्—सत्यता; इति—इस प्रकार; पादाः—पैर; कृते—सत्ययुग में; कृताः—स्थापित; अधर्म—अधर्म; अंशैः—अंशों द्वारा; त्रयः—तीनों मिलकर; भग्नाः—टूटे हुए; स्मय—अहंकार; सङ्ग—अत्यधिक स्त्री-प्रसंग; मदैः—नशे से; तव—तुम्हारा।

सत्ययुग में तुम्हारे चारों पैर तपस्या, पवित्रता, दया तथा सचाई के चार नियमों द्वारा स्थापित थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अहंकार, कामवासना तथा नशे के रूप में सर्वत्र व्याप्त अधर्म के कारण तुम्हारे तीन पाँव टूट चुके हैं।

तात्पर्य : भ्रामक शक्ति या भौतिक प्रकृति जीव पर उस अनुपात में अपना प्रभाव दिखाती है, जिस अनुपात में जीव माया के भ्रामक आकर्षण का शिकार होता है। पतिंगे प्रकाश की चमक से आकृष्ट होते हैं और इस तरह वे अग्नि के शिकार हो जाते हैं। इसी प्रकार, ठगिनी शक्ति माया सदैव बद्धजीवों को मोहित करके उन्हें मोह की अग्नि में झोंकती रहती है। वैदिक शास्त्र बद्धजीवों को आगाह करते हैं कि वे इस भ्रम के शिकार न बनें, अपितु इससे छुटकारा प्राप्त करें। वेद हमें आगाह करते हैं कि हम अज्ञान के अंधकार में न जाकर, प्रकाश के पथ पर अग्रसर हों। भगवान् स्वयं भी हमें आगाह करते हैं कि माया की ठगिनी शक्ति को जीतना अत्यन्त दुष्कर है, किन्तु पूरी तरह जो भगवान् की शरण में चला जाता है, वह सरलता से इसे जीत सकता है। लेकिन भगवान् के चरणकमलों के आश्रय में जाना आसान नहीं है। ऐसी शरण तो तपस्या, पवित्रता, दया तथा सत्य से युक्त पुरुषों को ही मिल सकती है। उन्नत सभ्यता के ये चारों नियम सत्ययुग के उल्लेखनीय लक्षण थे। उस युग में, प्रत्येक मनुष्य एक तरह से उच्चकोटि का योग्य ब्राह्मण होता था और आश्रमों में सभी परमहंस, अर्थात् उच्चकोटि के संन्यासी होते थे। सांस्कृतिक आधार के कारण मनुष्यों को माया ठगती नहीं थी। ऐसे प्रबल चरित्रवान् व्यक्ति अपने को माया के पाश से दूर रखने में सक्षम थे। लेकिन धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों ब्राह्मण संस्कृति के मूल सिद्धान्तों—तपस्या, पवित्रता, दया तथा सत्य में अहंकार, कामवासना तथा नशे में आनुपातिक वृद्धि के कारण कटौती होती गई, त्यों-त्यों मोक्ष का मार्ग या तो दिव्य आनन्द का मार्ग मानव समाज से दूर और दूर होता चला गया। कलियुग की अवधि बढ़ते रहने से लोग अत्यन्त अहंकारी हो रहे हैं और वे स्त्रियों तथा नशे के प्रति आसक्त रहते हैं। कलियुग के प्रभाव से कंगाल को भी अपनी कौड़ी का अभिमान है; स्त्रियाँ पुरुषों के मन को हरने के लिए, एक से एक आकर्षक वस्त्र पहनती हैं और पुरुष को शराब पीने, धूम्रपान करने, चाय पीने तथा तम्बाखू चबाने की लत पड़ गई है। ये सारी आदतें, या सभ्यता की

तथाकथित प्रगति ही, सारे अधर्म की जड़ है और इसीलिए व्यभिचार, घूस तथा भाई-भतीजावाद व्याप्त हैं। मनुष्य इन बुराइयों को कानूनों तथा पुलिस द्वारा नहीं रोक सकता, लेकिन वह मन के रोग को सही दवा करके ठीक कर सकता है—यह दवा है, ब्राह्मण संस्कृति अर्थात् तप, पवित्रता, दया तथा सत्य के नियमों का पक्षधर बनना। आधुनिक सभ्यता तथा आर्थिक विकास से गरीबी तथा अभाव की नई स्थिति उत्पन्न हो रही है, जिससे उपभोक्ता वस्तुओं की कालाबाजारी की जा रही है। यदि समाज में नेता तथा धन-सम्पन्न व्यक्ति अपनी संचित सम्पत्ति का आधा भाग इन पथभ्रष्ट लोगों पर खर्च करें और उन्हें ईश्वर चेतना अर्थात् *भागवत्* का ज्ञान प्रदान करें, तो निश्चय ही कलियुग इन बद्धजीवों को अपने जाल में फँसाने में असफल होगा। हमें यह निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि मिथ्या अहंकार, अपने जीवन मूल्यों के उच्च अनुमान, स्त्रियों के प्रति अत्यधिक आसक्ति या उनकी संगति तथा नशे से मानवीय सभ्यता शान्ति के मार्ग से विपथ हो जायेगी, चाहे लोग विश्वशान्ति के लिए कितना ही हल्लागुल्ला क्यों न करें। *भागवत* के सिद्धान्तों का उपदेश सारे मनुष्यों को स्वतः संयमी, भीतर-बाहर से स्वच्छ, दुखियों के प्रति दयालु तथा दैनिक आचरण में सच्चा बनायेगा। मानव समाज की बुराइयाँ, जो आज के समय में स्पष्ट रूप से देखने में आती हैं, उन्हें ठीक करने का यही उपाय है।

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।

तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इदानीम्—इस समय; धर्म—हे धर्मरूप; पादः—पाँव; ते—तुम्हारा; सत्यम्—सत्य; निर्वर्तयेत्—किसी तरह जीना; यतः—जिससे; तम्—उसको; जिघृक्षति—नष्ट करने का प्रयत्न करता है; अधर्मः—अधर्म रूप; अयम्—यह; अनृतेन—छल से, असत्य से; एधितः—बढ़ता हुआ; कलिः—साक्षात् कलि (कलह)।

अब तुम केवल एक पाँव पर खड़े हो, जो तुम्हारा सत्य है और तुम अब किसी न किसी तरह से जी रहे हो। किन्तु छल से फूलने-फलने वाला यह कलह-रूप कलि उस पाँव को भी नष्ट करना चाह रहा है।

तात्पर्य : धर्म के नियम किन्हीं रूढ़ियों या मानवकृत सूत्रों पर नहीं, अपितु चार मूल अनुष्ठानों पर टिके हुए हैं—ये हैं तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य। जन-साधारण को बचपन से ही इन सिद्धान्तों का अभ्यास करना सिखाना चाहिए। तपस्या का अर्थ है स्वेच्छा से ऐसी चीजें स्वीकार करना, जो भले ही

शरीर के लिए सुखकर न हों, किन्तु आध्यात्मिक अनुभूति के लिए लाभप्रद हों—यथा उपवास करना। मास में दो या चार बार उपवास करना एक प्रकार का तप है, जिसे केवल आध्यात्मिक अनुभूति के लिए करना चाहिए, किसी अन्य कार्य के लिए नहीं—न राजनीतिक, न अन्य कोई। *भगवद्गीता* (१७.५-६) में आत्म-साक्षात्कार के बजाय अन्य कार्य के लिए किये गये उपवास की भर्त्सना की गई है। इसी प्रकार मन तथा शरीर दोनों के लिए स्वच्छता आवश्यक है। केवल शरीर की स्वच्छता कुछ हद तक सहायक हो सकती है, लेकिन मन की स्वच्छता आवश्यक है और यह भगवान् के यशोगान् से प्राप्त की जाती है। कोई भी व्यक्ति मन के मैल को भगवान् का गुणगान किये बिना साफ नहीं कर सकता। ईश्वरविहीन सभ्यता मन को स्वच्छ नहीं कर सकती, क्योंकि इसे ईश्वर का कोई ज्ञान नहीं होता और यही एक सादा कारण है कि ऐसी सभ्यता में लोगों में उत्तम गुण नहीं आते, भले ही वे भौतिक दृष्टि से पूर्णतया सुसज्ज हों। हमें वस्तुओं को उनसे परिणाम-स्वरूप कर्म से देखना है। कलियुग में असन्तोष ही मानवीय सभ्यता का परिणाम-स्वरूप कर्मफल है, अतएव सभी मन की शान्ति चाहते रहते हैं। यह मन की शान्ति सत्ययुग में पूर्ण थी, क्योंकि मनुष्यों में उपर्युक्त गुण पाये जाते थे। धीरे-धीरे ये गुण घटकर त्रेतायुग में तीन-चौथाई हो गये, द्वापर में वे आधे हुए और इस कलियुग में केवल एक चौथाई रह गये हैं और जिस तरह असत्य का बोलबाला है, उससे इसमें भी कमी आ रही है। अहंकार, चाहे कृत्रिम हो या वास्तविक, तपस्या से प्राप्त फल को विनष्ट करनेवाला है; स्त्री संसर्ग के प्रति अधिक राग होने से स्वच्छता नष्ट होती है और अत्यधिक लत या नशे से दया विनष्ट होती है और अत्यधिक झूठे विज्ञापन से सत्य नष्ट होता है। भागवत धर्म के पुनरुद्धार से ही मानव सभ्यता सभी प्रकार के दोषों से बच सकती है।

इयं च भूमिर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।

श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

इयम्—यह; च—तथा; भूमिः—पृथ्वी की सतह; भगवता—भगवान् द्वारा; न्यासित—स्वयं तथा अन्यो के द्वारा सम्पन्न; ऊरु—भारी; भरा—बोझ; सती—ऐसा करने पर; श्रीमद्भिः—सर्व कल्याणकारी द्वारा; तत्—वह; पद-न्यासैः—पदचिह्न द्वारा; सर्वतः—चारों ओर; कृत—किया गया; कौतुका—सौभाग्य।

निश्चय ही, पृथ्वी का बोझ भगवान् द्वारा तथा अन्यो द्वारा भी कम किया गया था। जब वे अवतार के रूप में विद्यमान थे, तो उनके शुभ पदचिह्नों द्वारा समस्त कल्याण सम्पन्न होता था।

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिता सती ।

अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

शोचति—शोक करती है; अश्रु-कला—आँखों में अश्रु भर; साध्वी—सती; दुर्भगा—अत्यन्त अभागी; इव—सदृश; उज्झिता—त्यक्ता; सती—ऐसा किये जाने पर; अब्रह्मण्याः—ब्राह्मण संस्कृति से विहीन; नृप-व्याजाः—शासक के बहाने; शूद्राः—निम्नजाति; भोक्ष्यन्ति—भोग करेंगे; माम्—मुझको; इति—इस प्रकार।

अब यह सती दुर्भाग्यवश भगवान् द्वारा परित्यक्त होने के कारण, अपने नेत्रों में अश्रु भरकर अपने भविष्य (भाग्य) के लिए शोक कर रही है, क्योंकि अब वह शासक के जैसा स्वाँग करने वाले निम्न जाति के पुरुषों द्वारा शासित तथा भोग्य है।

तात्पर्य : क्षत्रिय अर्थात् पीड़ितों की रक्षा करने के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति राज्य के शासन के निमित्त होता है। अप्रशिक्षित अथवा पीड़ितों की रक्षा करने की इच्छा से रहित निम्न वर्ग के लोगों को प्रशासक के आसन पर नहीं बैठाया जा सकता। दुर्भाग्यवश कलियुग में निम्न वर्ग के लोग प्रशिक्षण के बिना ही जनमत (वोटों) के बल पर शासक का पद ग्रहण किये हुए हैं और ऐसे लोग पीड़ितों की रक्षा करने के बजाय ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं, जो सबों के लिए असह्य होती है। ऐसे लोग जनता के सारे सुखों की परवाह न करके अपनी ही तृप्ति करते हैं और इस तरह सती धरती माता अपने पुत्रों की—मनुष्य तथा पशुओं दोनों की—दयनीय दशा देखकर प्रलाप करती है। कलियुग में संसार का भविष्य ऐसा ही होगा और तब अधर्म का बोलबाला होगा। अधार्मिक प्रवृत्तियों का दमन करने के लिए उपयुक्त राजा न होने पर लोगों को *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं से विधिपूर्वक ज्ञात बनाकर अत्याचार, घूस, चोरबाजारी इत्यादि के मलिन वातावरण को निर्मल बनाया जा सकेगा।

इति धर्म महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।

निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; धर्मम्—धर्म को; महीम्—पृथ्वी को; च—भी; एव—जिस तरह; सान्त्वयित्वा—सान्त्वना देकर; महारथः—हजारों से अकेले लड़ने-वाला सेनापति, महारथी; निशातम्—तेज; आददे—ले लिया; खड्गम्—तलवार; कलये—कलि को मारने के लिए; अधर्म—अधर्म के; हेतवे—मूल कारण।

इस प्रकार, एक साथ हजार शत्रुओं से अकेले लड़ सकनेवाले महाराज परीक्षित ने धर्म तथा पृथ्वी को सान्त्वना दी। तब उन्होंने समस्त अधर्म के कारण साक्षात् कलि को मारने के लिए अपनी तेज तलवार निकाल ली।

तात्पर्य : जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, साक्षात् कलि वह है, जो जानबूझ कर शास्त्रों द्वारा वर्जित समस्त प्रकार के पापकर्मों को करता है। यह कलियुग निश्चित रूप से कलि के समस्त कार्यकलापों से भरा हुआ रहेगा, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज के सारे नेता, प्रशासक, विद्वान तथा बुद्धिमान व्यक्ति, या सबसे ऊपर भगवद्भक्त हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और कलियुग के सारे कार्यों के प्रति निश्चेष्ट हो जाँय। वर्षाऋतु में निश्चित रूप से प्रचुर वर्षा होती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग वर्षा से बचने के लिए साधन न अपनायें। राज्य के कार्यकारी अध्यक्षां का तथा अन्यो का कर्तव्य है कि वे कलि के कार्यकलापों के विरुद्ध या कलि द्वारा प्रभावित पुरुषों के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही करें। महाराज परीक्षित राज्य के आदर्श कार्यकारी अध्यक्ष हैं, क्योंकि वे अपनी तेज तलवार से कलि को मारने के लिए तुरन्त तैयार हो गये। प्रशासकों को चाहिए कि वे केवल भ्रष्टाचार-विरोधी प्रस्ताव पारित न करें, अपितु उन्हें चाहिए कि भ्रष्टाचार फैलानेवाले पुरुषों को प्रमाणित शास्त्रों की दृष्टि से पैनी तलवार लेकर मारने के लिए उद्यत रहें। शराब की दुकानों को अनुमति देकर प्रशासक लोग भ्रष्टाचारी गतिविधियों को नहीं रोक सकते। उन्हें चाहिए कि मादक औषधियों तथा शराब की सारी दुकानें अविलम्ब बन्द करा दें और जिन लोगों को नशे की लत हो, उन्हें मृत्यु-दण्ड तक देने से न हिचकें। कलि के कार्यकलापों को बन्द करने का यही उपाय है, जैसाकि यहाँ पर महारथी महाराज परीक्षित ने प्रदर्शित किया है।

तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ।

तत्पादमूलं शिरसा समगाद् भयविह्वलः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; जिघांसुम्—मारने के लिए इच्छुक; अभिप्रेत्य—ठीक से जानते हुए; विहाय—छोड़कर; नृप-लाञ्छनम्—राजा के वेश को; तत्-पाद-मूलम्—उसके चरणों पर; शिरसा—सिर के बल; समगात्—पूर्ण रूप से शरणागत; भय-विह्वलः—भयभीत।

जब कलि ने समझ लिया कि राजा उसको मार डालना चाह रहा है, तो उसने तुरन्त राजा का वेश त्याग दिया और भयभीत होकर अपना सिर झुका कर पूर्णरूप से उनके समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया।

तात्पर्य : कलि का राजवेश नकली था। राजा या क्षत्रिय के लिए राजवेश उपयुक्त होता है, किन्तु जब निम्नजाति का मनुष्य राजा का बनावटी वेश धारण कर लेता है, तो महाराज परीक्षित जैसे प्रामाणिक क्षत्रिय की ललकार से उसकी असली पहचान प्रकट हो जाती है। असली क्षत्रिय कभी आत्म-समर्पण नहीं करता। वह अपने प्रतिद्वंद्वी क्षत्रिय की ललकार को स्वीकार करता है और या तो मरते दम तक लड़ता है या जीतता है। सच्चा क्षत्रिय आत्म-समर्पण करना तो जानता ही नहीं। कलियुग में न जाने कितने ऐसे छद्मवेश धारण करनेवाले हैं, जो प्रशासकों का स्वाँग करते हैं, किन्तु उनका भेद तब खुल जाता है, जब असली क्षत्रिय उन्हें ललकारता है। अतएव जब छद्मवेशधारी कलि ने देखा कि महाराज परीक्षित से युद्ध करना उसके बूते के बाहर है, तो उसने अधीनस्थ के समान अपना सिर झुका दिया और अपना राजवेश उतार दिया।

पतितं पादयोर्वीरः कृपया दीनवत्सलः ।

शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

पतितम्—गिरा हुआ; पादयोः—पैरों पर; वीरः—वीर; कृपया—कृपावश; दीन-वत्सलः—दान के प्रति दयालु; शरण्यः—जो शरण स्वीकार करने में योग्य है, शरणागत का रक्षक; न—नहीं; अवधीत्—बध किया; श्लोक्यः—जो गायन किये जाने योग्य है; आह—कहा; च—भी; इदम्—यह; हसन्—मुसकाते हुए; इव—सदृश।

शरणागत के रक्षक तथा इतिहास में प्रशंसनीय महाराज परीक्षित ने उस दीन शरणागत तथा पतित कलि को मारा नहीं, अपितु वे दयापूर्वक हँसने लगे, क्योंकि वे दीनवत्सल जो हैं।

तात्पर्य : जब एक सामान्य क्षत्रिय भी शरणागत व्यक्ति को नहीं मारता, तो महाराज परीक्षित के लिए क्या कहा जाय, जो स्वभाव से दयालु तथा गरीबों पर सदय हैं। वे हँस रहे थे, क्योंकि

छद्मवेशधारी कलि ने निम्नजाति के व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान प्रकट कर दी थी और वे सोच रहे थे कि यह कितनी विडम्बना है कि जिस पैनी तलवार से वे जिस किसी का वध कर देते थे, उससे यह दीन निम्न जातिवाला कलि सामयिक आत्मसमर्पण के कारण बचा जा रहा है। इसीलिए इतिहास में महाराज परीक्षित के यश तथा सदयता का गुणगान किया जाता है। वे सदय तथा कृपालु सम्राट थे और अपने शत्रु को भी शरण में लेनेवाले थे। इस तरह दैवी इच्छा से कलि बच गया।

राजोवाच

न ते गुडाकेशयशोधराणां
बद्धाञ्जलेवै भयमस्ति किञ्चित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन
क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा ने कहा; न—नहीं; ते—तुम्हारा; गुडाकेश—अर्जुन; यशः—धराणाम्—यश पाने वालों का; बद्ध-अञ्जलेः—हाथ जोड़कर; वै—निश्चय ही; भयम्—भय; अस्ति—है; किञ्चित्—तनिक भी; न—न तो; वर्तितव्यम्—रहने के लिए अनुमति दी जा सकती है; भवता—तुम्हारे द्वारा; कथञ्चन—सभी तरह से; क्षेत्रे—पृथ्वी पर; मदीये—मेरे राज्य में; त्वम्—तुम; अधर्म-बन्धुः—अधर्म के मित्र।

राजा ने इस प्रकार कहा : हम अर्जुन के यश के उत्तराधिकारी हैं और चूँकि तुम हाथ जोड़कर मेरी शरण में आये हो, अतएव तुम्हें अपने प्राणों का भय नहीं होना चाहिए। लेकिन तुम मेरे राज्य में रह नहीं सकते, क्योंकि तुम अधर्म के मित्र हो।

तात्पर्य : सभी प्रकार के अधर्मों के मित्र कलि को क्षमा किया जा सकता है यदि वह आत्म-समर्पण करता है, लेकिन उसे किसी भी दशा में उसे कल्याण-राज्य के किसी भी कोने में नागरिक के रूप में रहने नहीं दिया जा सकता। पाँचों पाण्डव भगवान् कृष्ण के विश्वासपात्र प्रतिनिधि थे, जिनके कारण ही वास्तविक रूप से कुरुक्षेत्र का युद्ध अस्तित्व में आया, लेकिन यह उनके किसी निजी स्वार्थ के लिए नहीं था। वे चाहते थे कि संसार में महाराज युधिष्ठिर तथा उनके वंशज महाराज परीक्षित, जैसे आदर्श राजा राज्य करें, अतएव महाराज परीक्षित जैसे उत्तरदायी राजा, अपने राज्य में अधर्म के मित्र को पाण्डवों की कीर्ति का मूल्य चुकाकर, फूलने-फलने की अनुमति नहीं दे सकते थे। राज्य से

भ्रष्टाचार-उन्मूलन करने का यही एकमात्र उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं है। अधर्म के मित्रों को देश से निकाल दिया जाना चाहिए, इससे राज्य भ्रष्टाचार से बच सकेगा।

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहे-

ष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।

लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो

ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; वर्तमानम्—उपस्थित; नर-देव—हे नर-देवता या राजा; देहेषु—की देह में; अनुप्रवृत्तः—सर्वत्र घटित होकर; अयम्—ये सारे; अधर्म—अधर्म; पूगः—जनमसूह में; लोभः—लोभ; अनृतम्—असत्य; चौर्यम्—डकैती; अनार्यम्—अशिष्टता; अंहः—विश्वासघात; ज्येष्ठा—दुर्भाग्य; च—तथा; माया—छल; कलहः—झगड़ा; च—तथा; दम्भः—घमंड।

यदि कलि रूपी अधर्म को नर-देवता अर्थात् किसी कार्यकारी प्रशासक के रूप में कर्म करने दिया जाता है, तो निश्चय ही लोभ, असत्य, डकैती, अशिष्टता, विश्वासघात, दुर्भाग्य, कपट, कलह तथा दम्भ जैसे अधर्म का बोलबाला हो जायेगा।

तात्पर्य : किसी भी मत के अनुयायीगण धर्म के सिद्धान्तों जैसे—तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य का पालन कर सकते हैं, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं। इसके लिए हिन्दू से मुसलमान या ईसाई या अन्य कोई मतावलम्बी बनने की आवश्यकता नहीं है, जिससे की स्वधर्मत्यागी बनकर धर्म के सिद्धान्तों का पालन न करना पड़े। भागवतधर्म, धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने के लिए कहता है। धर्म के सिद्धान्त न तो रूढ़ियाँ हैं, न ही किसी मत के नियामक सिद्धान्त हैं। ऐसे नियामक सिद्धान्त सम्बन्धित देश तथा काल के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। मनुष्य को इतना ही देखना है कि धर्म का उद्देश्य पूरा होता है या नहीं। वास्तविक सिद्धान्तों तक पहुँचे बिना रूढ़ियों तथा सूत्रों में चिपके रहना ठीक नहीं है। धर्म-निरपेक्ष राज्य किसी भी विशेष मत के प्रति निष्पक्ष रह सकता है, किन्तु राज्य उपर्युक्त धर्म के सिद्धान्तों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। लेकिन कलियुग में राजसत्ता के कार्यकारी अध्यक्ष ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति उदासीन होंगे, अतएव उनके संरक्षण में धार्मिक सिद्धान्तों के विरोधी यथा लालच, असत्य, छल तथा चोरी स्वाभाविक रूप से पनपेंगे और ऐसे में राज्य में भ्रष्टाचार रोकने के लिए विज्ञापनबाजी के हो-हल्ले का कोई अर्थ नहीं होगा।

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो
 धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
 ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञै-
 र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वर्तितव्यम्—बने रहने के योग्य; तत्—अतएव; अधर्म—अधर्म; बन्धो—मित्र; धर्मेण—धर्म से; सत्येन—सत्य से;
 च—भी; वर्तितव्ये—स्थित होकर; ब्रह्म-आवर्ते—वह स्थान जहाँ यज्ञ सम्पन्न हो; यत्र—जहाँ; यजन्ति—ठीक से करते हैं;
 यज्ञैः—यज्ञ या भक्ति से; यज्ञ-ईश्वरम्—भगवान् को; यज्ञ—यज्ञ; वितान—फैलते हुए; विज्ञाः—पटु लोग।

अतएव, हे अधर्म के मित्र, तुम ऐसे स्थान में रहने के योग्य नहीं हो जहाँ पर बड़े-बड़े पण्डित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सत्य तथा धार्मिक नियमों के अनुसार यज्ञ करते हैं।

तात्पर्य : यज्ञेश्वर या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त प्रकार के याज्ञिक अनुष्ठानों के भोक्ता हैं। ऐसे यज्ञ-अनुष्ठान विभिन्न युगों के लिए शास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूप से बताये गये हैं। दूसरे शब्दों में, यज्ञ का अर्थ है भगवान् की श्रेष्ठता का स्वीकार करना और इसके लिए ऐसे कर्म करना, जिनसे भगवान् सभी प्रकार से सन्तुष्ट हों। नास्तिक लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते और वे भगवान् को प्रसन्न करने के लिए कोई यज्ञ नहीं करते। कोई भी स्थान या देश जहाँ भगवान् की श्रेष्ठता स्वीकार की जाय तथा यज्ञ सम्पन्न होता हो, वह ब्रह्मावर्त कहलाता है। विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न देश हैं और इनमें से प्रत्येक देश में परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ हो सकते हैं, लेकिन उन्हें प्रसन्न करने का मुख्य उद्देश्य भागवत में दिया गया है और यह है सत्य। धर्म का मूल सिद्धान्त सत्य है और सभी धर्मों का चरम लक्ष्य भगवान् को प्रसन्न करना है। इस कलियुग में यज्ञ का सबसे महान् सामान्य सूत्र सङ्कीर्तन यज्ञ है। यह मत उन पण्डितों का है, जो यज्ञ विधि का प्रचार करना जानते हैं। भगवान् चैतन्य ने यज्ञ की इस विधि का प्रचार किया और इस श्लोक से यह जाना जा सकता है कि संकीर्तन यज्ञ को कहीं भी कलि को भगाने के लिए तथा मानव समाज को कलि के प्रभाव का शिकार बनने से बचाने के लिए सम्पन्न किया जा सकता है।

यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान
 इज्यात्ममूर्तिर्यजतां शं तनोति ।
 कामानमोघान् स्थिरजङ्गमाना-
 मन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—ऐसे यज्ञोत्सवों में; हरिः—परमेश्वर; भगवान्—भगवान्; इज्यमानः—पूजित होकर; इज्य-आत्म—समस्त पूज्य देवों के आत्मा; मूर्तिः—रूपों में; यजताम्—पूजा करनेवाले; शम्—कल्याण; तनोति—फैलाता है; कामान्—इच्छाएँ; अमोघान्—अचूक; स्थिर-जङ्गमानाम्—समस्त चरों तथा अचरों का; अन्तः—भीतर; बहिः—बाहर; वायुः—वायु; इव—सदृश; एषः—सबों का; आत्मा—आत्मा ।

समस्त यज्ञोत्सवों में यद्यपि कभी-कभी कोई देवता की पूजा की जाती है, लेकिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को इसलिए पूजा जाता है, क्योंकि वे प्रत्येक के अन्तरात्मा हैं और वायु के समान भीतर तथा बाहर विद्यमान रहते हैं। इस तरह केवल वे ही हैं, जो पूजा करने वाले का समग्र कल्याण करते हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी देखा जाता है कि इन्द्र तथा चन्द्र जैसे देवताओं की भी पूजा की जाती है और उन्हें यज्ञ-फल प्रदान किये जाते हैं; फिर भी ऐसे समस्त यज्ञों का फल पूजा करने वालों को परमेश्वर द्वारा ही प्रदान किया जाता है और केवल भगवान् ही पूजा करनेवाले का ऐसा कल्याण कर सकते हैं। यद्यपि देवताओं की पूजा की जाती है, किन्तु वे भगवान् की अनुमती के बिना कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि भगवान् चर तथा अचर सबों के परमात्मा हैं।

भगवद्गीता (९.२३) में भगवान् ने स्वयं इसकी पुष्टि इस प्रकार की है :

येऽप्यन्य देवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

“हे कुन्ती पुत्र, मनुष्य अन्य देवों को जो भी अर्पित करता है, वह वास्तव में मेरे निमित्त ही होता है, किन्तु यह यथार्थ को समझे बिना अर्पित किया जाता है।”

तथ्य यह है कि परमेश्वर अद्वितीय हैं। भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं है। इस प्रकार भगवान् इस भौतिक सृष्टि से सदैव परे रहते हैं। लेकिन ऐसे बहुत से लोग हैं, जो सूर्य, चन्द्र तथा इन्द्र जैसे देवताओं की पूजा करते हैं, किन्तु ये तो परमेश्वर के भौतिक प्रतिनिधि मात्र हैं। ये तो परमेश्वर का अप्रत्यक्ष गुणात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु एक विद्वान या भक्त जानता है कि कौन क्या है।

अतएव वह सीधे परमेश्वर की पूजा करता है और गुणात्मक भौतिक प्रतिनिधियों के कारण इधर-उधर चित्त नहीं भटकने देता। जो इतने बुद्धिमान नहीं हैं, वे इन गुणात्मक भौतिक प्रतिनिधियों को पूजते हैं, लेकिन उनकी पूजा अनियमित होने के कारण नियम के विपरीत है।

सूत उवाच

परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ।

तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; परीक्षिता—महाराज परीक्षित द्वारा; एवम्—इस प्रकार; आदिष्टः—आदेश दिये जाने पर; सः—वह; कलिः—साक्षात् कलि; जात—हुआ; वेपथुः—कम्पन; तम्—उसको; उद्यत—उठी हुई; असिम्—तलवार; आह—कहा; इदम्—यह; दण्ड-पाणिम्—यमराज, मृत्युरूप को; इव—सदृश; उद्यतम्—प्रायः तैयार।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार महाराज परीक्षित द्वारा आदेश दिये जाने पर कलि भय के मारे थरथराने लगा। राजा को अपने समक्ष यमराज के समान मारने के लिए उद्यत देखकर कलि ने राजा से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : राजा कलि को तुरन्त मारने के लिए तैयार थे, यदि वह उनकी आज्ञा का पालन न करता; अन्यथा राजा को उसको जीवन दान देने में कोई आपत्ति न थी। कलि ने भी, विभिन्न प्रकार से दण्ड से बचने का उपाय लगाकर, अन्त में निश्चय किया कि अब वह राजा की शरण में जाय, अतः वह जीवन के भय से काँपने लगा। राजा या शासक को इतना प्रबल होना चाहिए कि वह कलि जैसे व्यक्ति के समक्ष काल पुरुष यमराज की भाँति खड़ा रह सके। राजा के आदेश का पालन होना चाहिए, अन्यथा अपराधी का जीवन संकट में रहता है। इसी विधि से राज्य के नागरिकों के सामान्य जीवन में उत्पात करनेवाले कलि पुरुषों के ऊपर शासन जमाया जाता है।

कलिरुवाच

यत्र क्व वाथ वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ।

लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कलि: उवाच—कलि ने कहा; यत्र—जहाँ कहीं; क्व—तथा कहीं भी; वा—अथवा; अथ—फलस्वरूप; वत्स्यामि—वास करूँगा; सार्व-भौम—हे पृथ्वी के स्वामी (सम्राट); तव—तुम्हारे; आज्ञया—आदेश से; लक्षये—देखता हूँ; तत्र तत्र—वहाँ-वहाँ; अपि—भी; त्वाम्—आपको; आत्त—लिये; इषु—बाण; शरासनम्—धनुष।

हे राजा, मैं आपकी आज्ञा से चाहे जहाँ कहीं भी रहूँ और जहाँ कहीं भी देखूँ, वहाँ केवल आपको ही धनुष-बाण लिए देखूँगा।

तात्पर्य : कलि देख रहा था कि महाराज परीक्षित सारे विश्व के सम्राट थे, अतएव वह चाहे जहाँ कहीं भी रहेगा, उसे राजा उसी मुद्रा में दिखेंगे। कलि उपद्रव के निमित्त था और महाराज परीक्षित कलि जैसे उपद्रवकारियों के दमन हेतु थे। अतएव कलि के लिए तो यही श्रेयस्कर था कि राजा उसे अन्यत्र न मारकर वहीं मार डालते। अब तो वह राजा के समक्ष शरणागत के रूप में था और अब जो कुछ करना था, वह राजा के हाथों में था।

तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ।

यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; मे—मेरा; धर्म-भृताम्—धर्म के समस्त रक्षकों में से; श्रेष्ठ—हे प्रमुख; स्थानम्—स्थान; निर्देष्टुम्—निश्चित करने के लिए; अर्हसि—आप समर्थ हैं; यत्र—जहाँ; एव—निश्चय ही; नियतः—सदैव; वत्स्ये—रह सकूँ; आतिष्ठन्—स्थायी रूप से स्थित; ते—आपका; अनुशासनम्—आपके शासन में।

अतएव हे धर्मरक्षकों में श्रेष्ठ, कृपा करके मेरे लिए कोई स्थान निश्चित कर दें, जहाँ मैं आपके शासन के संरक्षण में स्थायी रूप से रह सकूँ।

तात्पर्य : कलि ने महाराज परीक्षित को धर्मरक्षकों में श्रेष्ठ कहकर सम्बोधित किया, क्योंकि राजा उस व्यक्ति को मारने से रुक गये, जिसने उनकी शरण ग्रहण कर ली थी। किसी शरणागत जीव को समस्त सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए, भले ही वह शत्रु क्यों न हो। यही धर्म का नियम है। अतएव हम कल्पना कर सकते हैं कि भगवान् अपने शरणागत व्यक्ति को किस तरह का संरक्षण प्रदान करते होंगे, जो उनकी शरण में शत्रुरूप में नहीं, बल्कि सेवक के रूप में आया हो। भगवान् शरणागत की समस्त पापों तथा पापकर्मों के फलों से रक्षा करते हैं। (भगवद्गीता १८.६६)

सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।

द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; अभ्यर्थितः—इस प्रकार से निवेदित; तदा—उस समय; तस्मै—उसको; स्थानानि—स्थानों को; कलये—कलि को; ददौ—अनुमति प्रदान की; द्यूतम्—जुआ खेलना; पानम्—मद्यपान; स्त्रियः—स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध; सूना—पशु बध; यत्र—जहाँ भी; अधर्मः—पाप कर्म; चतुः-विधः—चार प्रकार के।

सूत गोस्वामी ने कहा : कलियुग द्वारा इस प्रकार याचना किये जाने पर महाराज परीक्षित ने उसे ऐसे स्थानों में रहने की अनुमति दे दी, जहाँ जुआ खेलना, शराब पीना, वेश्यावृत्ति तथा पशु-वध होते हों।

तात्पर्य : अधर्म के मूल लक्षण यथा अहंकार, वेश्यावृत्ति, मादक द्रव्य-सेवन तथा असत्य भाषण धर्म के चार सिद्धान्तों—तपस्या, स्वच्छता, दया तथा सत्य—के विपरीतार्थी हैं। कलि को जिन चार स्थानों में रहने के लिए राजा ने विशेष रूप से अनुमति दी, वे हैं—द्यूतक्रीड़ा का स्थान, वेश्यालय, मदिरालय तथा कसाईघर।

श्रील जीव गोस्वामी निर्देश देते हैं कि शास्त्रों के सिद्धान्तों विरुद्ध मद्यपान यथा *सौत्रामणी यज्ञ*, बिना विवाह के स्त्रियों की संगति तथा शास्त्रों के आदेश के विरुद्ध पशुवध, ये अधार्मिक कृत्य हैं। वेदों में, *प्रवृत्तों* अर्थात् जो भौतिक भोग में लगे हैं तथा *निवृत्तो* अर्थात् जो भवबन्धन से मुक्त हैं उनके लिए दो भिन्न-भिन्न प्रकार के आदेश हैं। *प्रवृत्तों* के लिए वैदिक आदेश यह है कि वे धीरे-धीरे अपने कर्मों को मोक्षमार्ग की ओर नियमित करें। अतएव जो लोग निपट अज्ञानी हैं और सुरा, सुन्दरी तथा मांस के आदी हैं, उन्हें *सौत्रामणी यज्ञ* करके सुरापान करने, विवाह करके स्त्री का संसर्ग करने तथा यज्ञों द्वारा मांस खाने की कभी कभी अनुमति प्रदान की जाती है। वैदिक साहित्य की ऐसी संस्तुतियाँ एक वर्ग विशेष के लिए हैं, सर्वसाधारण के लिए नहीं। लेकिन चूँकि ये विशिष्ट व्यक्तियों के लिए वैदिक आदेश हैं, अतएव *प्रवृत्तों* द्वारा किये जानेवाले ऐसे कार्य अधर्म नहीं माने जाते। किसी एक का भोजन दूसरे के लिए विष हो सकता है, इसी तरह जो तमोगुणियों के लिए संस्तुत है, सतोगुणियों के लिए विष बन सकता है। अतएव श्रील जीव गोस्वामी प्रभु पुष्टि करते हैं कि किसी वर्ग विशेष के लोगों के लिए शास्त्रों की संस्तुतियों को कभी अधर्म नहीं मानना चाहिए। लेकिन वस्तुतः ऐसे कार्य अधर्म हैं और

उन्हें कभी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। शास्त्रों की संस्तुतियाँ ऐसे अधर्म को बढ़ावा देने के लिए नहीं हैं, अपितु क्रमशः अधर्म को धर्म के पथ की ओर अग्रसर कराने के निमित्त हैं।

महाराज परीक्षित के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए, राज्यों के समस्त कार्यकारी प्रमुखों का यह कर्तव्य है कि वे अपने राज्यों में धर्म के सिद्धान्तों—तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य—की स्थापना करें और सभी प्रकार से अधर्म को—अहंकार, अवैध स्त्री-संसर्ग या वेश्यावृत्ति, मादक द्रव्य सेवन तथा असत्य को—रोकें। और अच्छा तो यही होगा कि कलि को द्यूत, सुरापान, वेश्यावृत्ति तथा पशु वध होनेवाले स्थानों में भेज दिया जाय, यदि ऐसे स्थान विद्यमान हों। जो लोग इन अधार्मिक आदतों से ग्रस्त हैं, उन्हें शास्त्रों के आदेशों से सुपथ पर लाया जाय। किसी भी परिस्थिति में उन्हें किसी भी राजसत्ता से प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राज्यसत्ता को द्यूतक्रीड़ा, सुरापान, वेश्यावृत्ति तथा असत्य को पूर्णरूपेण बंद करा देना चाहिए। जो राज्य बहुमत द्वारा भ्रष्टाचार का उन्मूलन करना चाहता है, उसे निम्नलिखित विधि से धर्म का प्रवर्तन करना चाहिए—

१. एक मास में यदि अधिक नहीं, तो कम से कम दो दिन अनिवार्य उपवास (तपस्या)। आर्थिक दृष्टि से भी, ऐसे दो दिन के उपवास से राज्य में लाखों टन खाद्यान्न की बचत होगी और इससे नागरिकों के स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

२. तरुण बालकों तथा बालिकाओं की आयु जब क्रमशः चौबीस वर्ष तथा सोलह वर्ष की हो जाय, उनका अनिर्वायतः विवाह होना चाहिए। यदि लड़कों तथा लड़कियों का वैध विवाह हो चुका हो, तो स्कूलों तथा कालेजों में सह-शिक्षा देने में कोई हानि नहीं है। यदि लड़कों तथा लड़कियों में घनिष्ठता हो भी जाय, तो अवैध सम्बन्ध होने के पूर्व उनका समुचित रीति से विवाह कर दिया जाय। तलाक ऐक्ट से वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, अतएव इसको मिटा दिया जाय।

३. राज्य के नागरिक राज्य में या समाज में आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए अपनी-अपनी आय का पचास प्रतिशत तक दान में दें। वे *भागवत* के सिद्धान्तों का उपदेश (१) *कर्मयोग* द्वारा अर्थात् भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ही प्रत्येक काम करके, (२) प्रामाणिक पुरुषों या मुक्तात्माओं से *श्रीमद्भागवत* का नियमित श्रवण करके, (३) घर पर या पूजा स्थलों पर सामूहिक रूप से भगवान् की महिमा का कीर्तन करके, (४) *श्रीमद्भागवत* के उपदेश में लगे *भागवतों* की सभी प्रकार से सेवा

करके, तथा (५) ईश्वर चेतना से पूरित वातावरण वाले स्थान में रहकर करें। यदि राज्य उपर्युक्त विधि से संचालित हो, तो सहज ही सर्वत्र ईश्वर-चेतना होगी।

सभी प्रकार का जुआ (द्यूत), यहाँ तक कि सट्टेबाजी भी, पतन की ओर ले जानेवाली है और जब राज्य में जुआ खेलने को प्रोत्साहन मिलता है, तो सत्य का सर्वथा लोप हो जाता है। उपर्युक्त आयु से अधिक काल तक, तरुणों तथा तरुणियों को अविवाहित रहने की अनुमति तथा सभी तरह के कसाईघरों को लाइसेंस का, निषेध होना चाहिए। मांसाहारियों को शास्त्रानुमोदित विधि से मांस ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा नहीं। सभी प्रकार का नशा, यहाँ तक कि सिगरेट पीना, तम्बाकू चबाना तथा चाय पीना भी, निषिद्ध होना चाहिए।

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।

ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर; च—भी; याचमानाय—भिक्षुक को; जात-रूपम्—सोना; अदात्—दिया; प्रभुः—राजा ने; ततः—जिससे; अनृतम्—असत्य; मदम्—नशा; कामम्—विषयवासना; रजः—रजोगुण के कारण; वैरम्—शत्रुता; च—तथा; पञ्चमम्—पाँचवाँ।

कलि ने जब कुछ और याचना की, तो राजा ने उसे उस स्थान में रहने की अनुमति प्रदान की जहाँ सोना उपलब्ध हो, क्योंकि जहाँ-जहाँ स्वर्ण होता है, वहीं-वहीं असत्य, मद, काम, ईर्ष्या तथा वैमनस्य रहते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि महाराज परीक्षित ने कलि को रहने के लिए चार स्थानों में रहने की अनुमति दे दी, किन्तु उनके राज्य में ऐसे स्थानों को ढूँढ़ पाना कठिन था, क्योंकि महाराज परीक्षित के शासनकाल में ऐसे स्थान कहीं भी न थे। अतएव कलि ने राजा से कुछ ऐसा देने के लिए याचना की जो व्यावहारिक हो और उसके कपट-कार्यों के काम आ सके। इस प्रकार महाराज परीक्षित ने उसे उस स्थान में रहने की अनुमति दे दी, जहाँ सोना रहता है, क्योंकि जहाँ सोना होता है, वहाँ उपर्युक्त चारों वस्तुएँ तो पाई ही जाती हैं; उनके अतिरिक्त वैर (वैमनस्य) भी रहता है। इस तरह कलि स्वर्ण-मानकीकृत हो गया। श्रीमद्भागवत के अनुसार सोना असत्य भाषण, मादक द्रव्य सेवन, वेश्यावृत्ति, ईर्ष्या तथा शत्रुता को प्रोत्साहन देता है। यहाँ तक कि स्वर्ण-मानक विनिमय तथा मुद्रा भी बुरे होते हैं।

स्वर्ण-मानक मुद्रा भी असत्य पर आधारित है, क्योंकि मुद्रा सुरक्षित सोने के समकक्ष नहीं होती। इसका मूल सिद्धान्त झूठा है, क्योंकि मुद्रा नोटों को वास्तविक सुरक्षित स्वर्ण से अधिक मात्रा में जारी किया जाता है। अधिकारियों की इस कृत्रिम मुद्रा-स्फीति से राज्य की अर्थ-व्यवस्था का दुरुपयोग होता है। बुरे धन या कृत्रिम मुद्रानोटों के कारण वस्तुओं के दाम कृत्रिम रूप से बढ़ जाते हैं। बुरा धन अच्छे धन को बाहर निकाल फेंकता है। अतएव कागजमुद्रा के स्थान पर, असली सोने के सिक्के विनिमय हेतु, प्रयुक्त होने चाहिए। इससे सोने का दुरुपयोग बन्द हो जाएगा। स्त्रियों के स्वर्णाभूषण गुण के अनुसार नहीं, अपितु भार के अनुसार, कण्ट्रोल पर बेचे जाँय। इससे काम, ईर्ष्या तथा शत्रुता को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। जब सिक्कों के रूप में वास्तविक स्वर्णमुद्रा होगी तो असत्य, वेश्यावृत्ति इत्यादि को जन्म देने में सोने का प्रभाव स्वतः रुक जाएगा। फिर भ्रष्टाचार विरोधी मंत्रालय की जरूरत नहीं रह जाएगी, जो वेश्यावृत्ति तथा असत्य का ही दूसरा नाम है।

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ।

औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अमूनि—ये सब; पञ्च—पाँच; स्थानानि—स्थान; हि—निश्चय ही; अधर्म—अधर्म को; प्रभवः—प्रोत्साहन देनेवाले; कलिः—कलियुग; औत्तरेयेण—उत्तरा के पुत्र द्वारा; दत्तानि—दिये गये; न्यवसत्—रहने लगा; तत्—उसके द्वारा; निदेश-कृत्—आदेश पाकर।

इस प्रकार उत्तरा के पुत्र, महाराज परीक्षित के निर्देश से कलि को उन पाँच स्थानों में रहने की अनुमति मिल गई।

तात्पर्य : इस प्रकार कलियुग का समारम्भ स्वर्ण के मानकीकरण से हुआ, अतएव विश्वभर में असत्य, नशा, पशुवध तथा वेश्यावृत्ति का बोलबाला है और बुद्धिमान लोग भ्रष्टाचार को भगाने के लिए इच्छुक हैं। ऊपर, इनसे बचाव की विधि बताई गई है और हर एक व्यक्ति इस सुझाव से लाभ उठा सकता है।

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ।

विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; एतानि—इन सबों को; न—कभी नहीं; सेवेत—सम्पर्क में आए; बुभूषुः—भलाई चाहनेवाले; पुरुषः—पुरुष; क्वचित्—किसी भी दशा में; विशेषतः—विशेष रूप से; धर्म-शीलः—मुक्ति पथ पर अग्रसर होनेवाले; राजा—राजा; लोक-पतिः—जननेता; गुरुः—ब्राह्मण तथा संन्यासी-गण।

अतएव जो कोई भी, विशेष रूप से जो राजा, धर्मोपदेशक, जननेता, ब्राह्मण तथा संन्यासी जो अपनी भलाई चाहते हैं, उन्हें उपर्युक्त चार अधार्मिक कार्यों के सम्पर्क में कभी नहीं आना चाहिए।

तात्पर्य : ब्राह्मण अन्य सभी वर्णों के धर्मोपदेशक होते हैं और संन्यासी सभी वर्णों तथा आश्रमों के गुरु होते हैं। उसी प्रकार राजा तथा जननेता भी समस्त लोगों के भौतिक कल्याण के लिए उत्तरदायी होते हैं। अतएव उन्नति के इच्छुक धर्मवेत्ता तथा उत्तरदायी लोगों को अथवा उन्हें जो अपना अमूल्य मनुष्य जीवन बर्बाद नहीं करना चाहते, अधर्म के सिद्धान्तों से, विशेष रूप से स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध से बचना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण सत्यवादी नहीं है, तो ब्राह्मण होने के उसके सारे अधिकार तत्काल व्यर्थ एवं निर्मूल हो जाते हैं। यदि संन्यासी का किसी स्त्री से अवैध सम्बन्ध हो जाता है, तो तभी से उसका संन्यासी कहलाने का अधिकार झूठा हो जाता है। इसी प्रकार यदि राजा तथा जननेता अनावश्यक रूप से अहंकारी है या उसे मद्यपान तथा धूम्रपान की लत है, तो वह लोक-कल्याण के कार्य करने के लिए अयोग्य ठहरता है। सत्य (सचाई) सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त है। मानव समाज के चार प्रकार के अग्रणी अर्थात् संन्यासी, ब्राह्मण, राजा तथा जननेता की परीक्षा उनके चरित्र तथा गुणों के आधार पर की जानी चाहिए। किसी को गुरु या समाज का स्वामी स्वीकार करने के पूर्व, उसे चरित्र की उपर्युक्त कसौटियों में परखना चाहिए। ऐसे जननेता भले ही शैक्षिक योग्यता में कम हों, लेकिन उन्हें चार अयोग्यताओं, अर्थात् जुआ, मद, वेश्यावृत्ति तथा पशुवध के दूषणों से सर्वथा मुक्त होना चाहिए।

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति ।

प्रतिसन्दध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

वृषस्य—(धर्मरूप) बैल का; नष्टान्—विनष्ट; त्रीन्—तीन; पादान्—पाँवों को; तपः—तपस्या; शौचम्—स्वच्छता; दयाम्—दया; इति—इस प्रकार; प्रतिसन्दधे—पुनः स्थापित किया; आश्रास्य—आश्रासन देकर; महीम्—पृथ्वी को; च—तथा; समवर्धयत्—सुधार किया।

तत्पश्चात् राजा ने धर्म-रूप बैल के विनष्ट पैरों को पुनःस्थापित किया और आश्रासन देनेवाले कार्यों से पृथ्वी की दशा में काफी सुधार किये।

तात्पर्य : कलि के लिए विशेष स्थान नियत करके, महाराज परीक्षित ने उसे एक तरह से छला। कलि, धर्मरूप बैल तथा गायरूप पृथ्वी की उपस्थिति में, वे अपने राज्य की सामान्य स्थिति का आकलन कर सके। अतएव उन्होंने बैल के तीन पाँवों को पुनः स्थापित करने की तुरन्त व्यवस्था की। ये पाँव थे—तप, स्वच्छता तथा दया। और विश्वभर के लोगों के सामान्य लाभ के लिए उन्होंने स्वर्ण-भण्डार को समाज में स्थायित्व लाने के लिए प्रयुक्त किया। सोना निश्चित रूप से असत्य, मद, वेश्यावृत्ति, शत्रुता तथा हिंसा को जन्म देने वाला है, किन्तु सुयोग्य राजा या जननेता अथवा ब्राह्मण या संन्यासी के मार्गदर्शन में वही सोना धर्मरूप बैल के लुप्त पाँवों को फिर से स्थापित करने में प्रयुक्त किया जा सकता है।

अतएव महाराज परीक्षित ने अपने पितामह अर्जुन की भाँति, कलि की तुष्टि के लिए रखे सारे अवैध सोने को एकत्र किया और *श्रीमद्भागवत* के उपदेशानुसार उसे संकीर्तन-यज्ञ में प्रयुक्त किया। जैसाकि हमने पहले सुझाव दिया है, संचित धन के वितरण के लिए इसके तीन भाग करने चाहिए—पचास प्रतिशत भगवान् की सेवा के लिए, पचीस प्रतिशत परिवारजनों के लिए तथा पचीस प्रतिशत निजी आवश्यकताओं के लिए। आय का पचास प्रतिशत भगवान् की सेवा के लिए या संकीर्तन यज्ञ के माध्यम से समाज में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार हेतु व्यय करना सर्वोच्च मानवीय करुणा का प्रदर्शन होगा। सामान्यतया विश्व के लोग आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में, विशेष रूप से भगवद्भक्ति के विषय में, अंधकार में रहते हैं। अतएव भक्तिमय सेवा के क्रमबद्ध दिव्य ज्ञान का प्रसार करना सबसे बड़ी दया है, जो विश्व के प्रति प्रदर्शित की जा सकती है। जब प्रत्येक व्यक्ति को अपने संचित सोने का पचास प्रतिशत हिस्सा भगवान् की सेवा में अर्पित करने के लिए शिक्षी दी जाएगी, तो निश्चय ही तप, स्वच्छता तथा दया स्वतः पीछे पीछे आएँगे और इस तरह धर्म के खोये हुए तीनों पाँव स्वतः स्थापित हो जाएँगे।

जब पर्याप्त तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य होगा तो पृथ्वी माता पूर्णतः तुष्ट होंगी और कलि को मानव समाज के ढाँचे में घुसपैठ करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हो सकेगा।

स एष एतर्ह्याध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ।
 पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥
 आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ।
 गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; एषः—यह; एतर्हि—इस समय; अध्यास्ते—शासन कर रहा है; आसनम्—सिंहासन; पार्थिव-उचितम्—राजा के लिए योग्य; पितामहेन—पितामह द्वारा; उपन्यस्तम्—हस्तान्तरित होकर; राज्ञा—राजा द्वारा; अरण्यम्—वन; विविक्षता—इच्छुक; आस्ते—है; अधुना—इस समय; सः—वह; राज-ऋषिः—राजर्षि; कौरव-इन्द्र—कुरु राजाओं में प्रमुख; श्रिया—यश; उल्लसन्—फैलते हुए; गजाह्वये—हस्तिनापुर में; महा-भागः—सर्वाधिक भाग्यशाली; चक्रवर्ती—सम्राट; बृहत्-श्रवाः—अत्यन्त विख्यात।

वे ही सर्वाधिक भाग्यशाली सम्राट महाराज परीक्षित, जिन्हें महाराज युधिष्ठिर ने वन जाते समय हस्तिनापुर का राज्य सौंपा था, अब कुरुवंशी राजाओं के कार्यों से ख्याति प्राप्त करके अत्यन्त सफलतापूर्वक संसार पर शासन कर रहे हैं।

तात्पर्य : नैमिषारण्य के ऋषियों ने महाराज परीक्षित की मृत्यु के कुछ समय बाद ही, दीर्घकालीन यज्ञोत्सव प्रारम्भ किया था। इस यज्ञ को एक हजार वर्ष तक चलना था और ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में भगवान् कृष्ण के बड़े भाई बलदेव के कुछ समकालीन व्यक्ति यज्ञस्थल पर गये थे। कुछ विद्वानों के मतानुसार वर्तमानकाल का प्रयोग भूतकाल की तुलना में समय की छोटी अवधि को प्रदर्शित करने के लिए भी होता है। उसी अर्थ में यहाँ पर महाराज परीक्षित के शासन के लिए वर्तमान काल का प्रयोग हुआ है। सतत तथ्य के लिए भी वर्तमान काल का प्रयोग किया जा सकता है। महाराज परीक्षित के सिद्धान्तों को अब भी लागू किया जा सकता है और यदि अधिकारियों में संकल्प हो, तो मानव समाज को अब भी सुधारा जा सकता है। अब भी, यदि हम महाराज परीक्षित की भाँति कार्यवाही करने में दृढ़ हो लें, तो कलि द्वारा प्रचारित समस्त अनैतिक कार्यकलापों को समाज से हटा सकते हैं। यद्यपि उन्होंने कलि के लिए कुछ स्थान निश्चित कर दिये थे, किन्तु कलि को संसार भर में ऐसे स्थान नहीं मिल पाये, क्योंकि महाराज परीक्षित इतने सावधान थे कि जुआ खेलने, मद्यपान करने,

वेश्यावृत्ति तथा पशुवध के लिए कोई स्थान ही न रहे। आधुनिक प्रशासक राज्य से भ्रष्टाचार समाप्त करना चाहते हैं, लेकिन वे निपट मूर्ख होने के कारण यह भी नहीं जानते कि इसे कैसे किया जाय। वे जुआ खेलने के अड्डे, मदिरा तथा अन्य नशीली औषधियों के लिए स्थान, वेश्यालय, होटल की वेश्यावृत्ति तथा सिनेमा-घर खोलने तथा हर काम में झूठ के लिए लाइसेंस देते हैं और साथ ही राज्य से भ्रष्टाचार भगाना चाहते हैं। वे ईश्वर-चेतना के बिना ईश्वर का राज्य चाहते हैं। भला दो विरोधी बातें एकसाथ कैसे सम्भव हो सकती हैं? यदि हम राज्य से भ्रष्टाचार दूर करना चाहते हैं, तो हमें सर्वप्रथम समाज को इस तरह संगठित करना होगा कि वह धार्मिक सिद्धान्तों को—तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य को—ग्रहण करे और हमें परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिए, जुआ, शराब, वेश्या तथा असत्य के सारे स्थानों को बन्द कर देना पड़ेगा। ये कुछ व्यावहारिक शिक्षाएँ हैं, जो हमें श्रीमद्भागवत से प्राप्त होती हैं।

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।

यस्य पालयतः क्षौणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्-भूत—इस प्रकार हुआ; अनुभावः—अनुभव; अयम्—इसका; अभिमन्यु-सुतः—अभिमन्यु का पुत्र; नृपः—राजा; यस्य—जिसका; पालयतः—अपने शासन के कारण; क्षौणीम्—पृथ्वी पर; यूयम्—तुम सब; सत्राय—यज्ञ सम्पन्न करने के लिए; दीक्षिताः—दीक्षित हुए।

अभिमन्यु पुत्र, महाराज परीक्षित, इतने अनुभवी हैं कि उनके पटु शासन तथा संरक्षकत्व के बल पर तुम सब इस प्रकार का यज्ञ सम्पन्न कर रहे हो।

तात्पर्य : ब्राह्मण तथा संन्यासी समाज के आध्यात्मिक उन्नयन में अत्यन्त दक्ष होते हैं, जबकि क्षत्रिय या प्रशासक मानव समाज में भौतिक शान्ति तथा सम्पन्नता लाने में दक्ष होते हैं। दोनों ही सुख के स्तम्भ समान हैं, अतएव वे जन-कल्याण में पूर्ण सहयोग के निमित्त होते हैं। महाराज परीक्षित कलि को अपने कार्यक्षेत्र से भगाने में अत्यन्त अनुभवी थे, जिससे राज्य में आध्यात्मिक प्रबुद्धता के लिए स्थान मिल सका। यदि सामान्य लोग ग्रहणशील न हों, तो आध्यात्मिक प्रबुद्धता की आवश्यकता पर बल दे पाना कठिन होता है। तप, स्वच्छता, दया तथा सत्य—ये धर्म के मूल सिद्धान्त हैं। इनसे आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करने की भूमिका तैयार होती है और महाराज परीक्षित ने इसके लिए

अनुकूल परिस्थिति बना ली थी। इस तरह नैमिषारण्य के ऋषि एक हजार वर्षों का यज्ञ करने में सक्षम बने। दूसरे शब्दों में, राज्य की सहायता के बिना, दर्शन का कोई मत या धर्म निरन्तर प्रगति नहीं कर सकता। सभी के लिए कल्याणकारी इस अच्छे कार्य के लिए ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच पूरा सहयोग होना चाहिए। महाराज अशोक के समय तक भी यह भावना बनी रही। राजा अशोक ने भगवान् बुद्ध को पर्याप्त समर्थन प्रदान किया, जिससे उनका सम्प्रदाय सारे विश्व में फैल गया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत 'कलि को दण्ड तथा पुरस्कार' नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।